Sri Pratap College
SRINAGAR
LIBRARY

Class No. 891.433
Book No. A23B
Accession No. 26053

[redacted]

आदिल रशीद

Library Sri Pratap College
Srinagar

बाबुल

Library Sri Pratap College,
Srinagar.

Accession Number....[redacted] 26053

Date .... Class No.....................

891.433
A23B

प्रकाशक : ऐडी पब्लिशर्ज
प्रधान-कार्यालय—३/१७ आसफअली रोड, नई दिल्ली-१
शाखा—ई७५, चर्च रोड जुहू. बम्बई–५४

मूल्य : ४·०० चार रुपये

मुद्रक : मुकेश आर्ट प्रेस, करोल बाग, नई दिल्ली

BABUL : ADIL RASHID : NOVEL.

Price Rs. 4/00

Library Sri Pratap College,
Srinagar.

बाबुल

(एक उपन्यास)

A.G.S. Enterprise

Sh. Ghulam Mohamad & Sons
Booksellers & Publishers
MAISUMA BAZAR.
SRINAGAR.

ऐडी पब्लिशर्ज, नई दिल्ली-१

सर्दी इतनी ज्यादा थी कि दांत से दांत बज रहे थे। शरीरों में कम्पन व हाथ सुन्न थे। जिसे देखो वह सर्दी की शिकायत करता हुआ सी-सी कर रहा था। लेकिन दुर्गेश का सारा शरीर पसीने में डूबा जा रहा था। उसका माथा पसीने से भीगा हुआ था और वह बहुत व्याकुलता से अपने हाथ मल रहा था और कमरे के बाहर टहल रहा था

उसके चेहरे पर हवाइयां उड़ रही थीं। और वह बार-बार अपने होंठ चबा रहा था। उसकी यह बेचैनी देखने वालों के लिए दुःखदायक थी ! सहानुभूति प्रकट करने वालों की नज़रें उस पर पड़ रही थीं कि इतने में नर्सिंग होम के चपरासी ने इससे आकर कहा :

"आपको डाक्टर साहब अपने कमरे में बुला रहे हैं।"

"एँ !"

वह इस तरह चौंक पड़ा जैसे कि उसे किसीने गहरी निद्रा से जगा दिया हो। और चपरासी ने अपनी बात दुहराई !

"आपको डाक्टर साहब बुला रहे हैं।"

और वह बड़ी व्याकुलता से चपरासी के पीछे-पीछे डाक्टर के कमरे की ओर लपका। उसका हृदय जोर-जोर से उसके सीने में धड़क रहा था। और उसके चेहरे पर हवाइयां उड़ रही थीं ! डाक्टर ने सहानुभूति तथा प्यार से कहा।

"बैठ जाइए, दुर्गेश साहब !"

और वह डाक्टर के सामने वाली कुर्सी पर बैठ गया। डाक्टर ने उसके चहरे पर एक भरपूर नजर डाली।

"आपको अपने-आप पर काबू रखना चाहिए, मि० दुर्गेश !"

और वह डाक्टर के मुंह से यह सुनते ही बड़बड़ा कर खड़ा हो गया।

"जी।"

उसने "जी" इस अन्दाज़ से कहा जैसे डाक्टर ने उसे इसके जीवन की सबसे बुरी खबर सुना दी हो। और वह एकदम चीख-सा पड़ा !

"क्या हुआ डाक्टर साहब मेरी...."

डाक्टर ने उसका कंधा पकड़कर बिठा दिया। वह बड़े शान्त स्वभाव से अपनी कुर्सी पर उसे दुबारा बिठाने के लिए उठा था।

"इतनी अधिक घबराहट और बेचैनी से आपको काम नहीं लेना चाहिए, मि० दुर्गेश !" डाक्टर ने उसे धीरज देते हुए कहा।

"आपकी धर्मपत्नी को बचाया जा सकता है ? वह अवश्य बच जाएगी लेकिन...."

और वह फिर बेचैन खड़ा हो गया

"लेकिन क्या डाक्टर...? लेकिन के आगे बहुत कुछ हो सकता है.."

डाक्टर ने उसको ध्यान से देखते हुये कहा।

"आपकी पत्नी का केस...."बस बहुत मामूली-सा...."बस यूं ही, एक थोड़ा-सा...."

डाक्टर जल्दी से कह गया कि "कोम्पलीकेटिड (Complicated) हो गया है। लेकिन घबराने की कोई बात नहीं मिस्टर दुर्गेश ...बस छोटी सी बात है एक माइनर सा (minor) आपरेशन और बस, आपकी पत्नी बिल्कुल बच जाएगी। और एक नर्स आपकी गोद में एक मासूम-सा खिलौना लाकर दे देगी। मासूम-सा, जीता-जागता खिलौना, जो अपनी छोटी-छोटी आंखों से आपको देखकर

मुस्करा देगा।"

और फिर उसने कहा, "मैने के० टी० एम० हास्पीटल की सबसे होशियार लेडी डाक्टर को फोन कर दिया है बस अब आती ही होगी।"

उसने इसकी तरफ एक कागज बढ़ाया।

"आप इस पर हस्ताक्षर कर दीजिए।"

दुर्गेश ने स्वीकृतिपत्र पर अपने हस्ताक्षर कर दिए। उसकी आंखों में आंसू भर गए थे और उसकी पलकों में इस तरह थरथरा रहे थे जैसे कि बारीक दाने वाली कंघी में पानी की बूंदे रुकी हों। डाक्टर ने उसे फिर सांत्वना दी।

"घबराने की कोई बात नहीं मिस्टर दुर्गेश! आपरेशन के खर्च की आप चिन्ता न करें, वह मैं अपने एकाउण्ट मे ले लूंगा और फिर देखा जाएगा!"

और वह दुर्गेश के कंधे को प्यार से थपथपाते हुए कमरे से बाहर निकल गया।

दुर्गेश की व्याकुलता का कोई ठिकाना नहीं था कि नर्स ने उसकी गोद में एक बच्चा रख दिया।

"अरे…! बहुत-बहुत धन्यवाद, सिस्टर धन्यवाद…।"

उसने खुशी से पागल होते हुए इस मासूम बच्चे को देखा! नर्स बोली, "यह लड़की है!"

और वह जैसे कि खुशी से पागल हो गया, उसने बेकाबू होकर अपनी बच्ची का माथा चूम लिया! वह झूमकर बोला—

"अरे मिस्टर! तुम्हें क्या मालूम कि मुझे बेटी का कितना बड़ा अरमान था। मैं तो भगवान जानता है कि खुशी से पागल हुआ जा रहा हूं।"

"वह तो मैं भी देख रही हूं।" नर्स ने जवाब दिया ! और फिर उसने उसके बाद पूछा "मेरी पत्नी ?"

नर्स झट से बोली—

"शी इज ओ० के० मिस्टर दुर्गेश, शी इज परफेक्टली आलराइट!"

थेंक्यू सिस्टर, थेंक्यू ! मैं डाक्टर सिन्हा का जितना भी अहसान मानूं वह कम है।"

उसने अपनी बहुत नाजुक तथा कोमल बच्ची का माथा एक बार और चूम लिया।

दुर्गेशचन्द्र अपने देश का माना हुआ लेखक था, वह उर्दू तथा हिन्दी, दोनों भाषाओं में लिखता था। और वह देश की प्रत्येक जाति में प्रसिद्ध था और उनका प्यारा लेखक था! लेकिन देश की साहित्यिक पत्रिकाएँ इसकी कहानियां प्रायः मुफ्त ही छपती थी और इसे अपनी इन कहानियों का कुछ भी पैसा नहीं मिलता था या नहीं के बराबर मिलता था।

बहुत से 'कम-धनिक पत्रिकाएँ' वाले तो इसकी कहानियों का मूल्य देते ही न थे और जो एक-दो पत्रिकाएँ धनिको की थीं वह इसकी एक कहानी का मूल्य इसे पन्द्रह या बीस रुपये से अधिक कभी नहीं देते थे और इसीलिए इसकी आर्थिक दशा बहुत बड़े लेखक होने के नाते भी बहुत कम थी, लगभग शून्य के बराबर।

वह उपन्यासकार भी था और उसके उपन्यास देश भर में बड़े शौक के साथ पढ़े जाते थे और वह बहुत अधिक प्रसिद्ध भी थे, परन्तु इसके उपन्यास भी इसका पेट सरलता से नहीं भर सकते थे! पब्लिशर्ज ने आज तक इसकी मेहनत का इसे पूरा मूल्य नहीं दिया था। इसके उपन्यासों के कई-कई संस्करण छपते थे लेकिन किसी उर्दू और हिन्दी के पब्लिशर्ज ने इसे एक ऐडीशन से अधिक के पैसे नहीं दिए थे। वह हमेशा इससे यही कहा करते कि अभी इसके उपन्यास का पहला ऐडीशन ही समाप्त नहीं हुआ है

वह बेचारा इतना बड़ा और प्रिय लेखक होने पर भी सदैव पैसों की तरफ से परेशान ही रहता था और उसे अपने जीवन के किसी रूप में भी खुशहाली और पैसों की तरफ से सन्तोष न मिला था।

उसे अपनी पत्नी से अत्यधिक प्रेम था। इतना प्रेम था उसे अपनी पत्नी से, जिसे सरलता पूर्वक इश्क कहा जा सकता था। वह अपन पत्नी शकुन्तला से बिल्कुल इसी ढंग में प्रेम करता था कि जैसे एक प्रेमी अपनी प्रेमिका से प्रेम करता है।

दुर्गेशचन्द्र को एक बेटी का बड़ा अरमान था। उसके यहां जब पहला बच्चा होने वाला था तो भी उसे बेटे का नहीं वरन् बेटी का ही अरमान था और वह यह चाहता था कि उसके यहां पुत्री पैदा हो परन्तु उसके यहां पुत्री के स्थान पर पुत्र पैदा हुआ और वह यह देख-कर बड़ा प्रसन्न हुआ और यह नहीं कि उसने बेटे का चांद-सा मुख देखकर मुंह सुजा लिया हो या इस बात मे उदास हो गया हो कि उसके यहां बेटी की जगह बेटा क्यों पैदा हुआ।

उसने अपने बेटे को बेकाबू होकर अपने कलेजे से लगाते हुए अपनी पत्नी शकुन्तला स कहा, "शकुन्त! तुम जीत गई और मैं हार गया। तुम्हें बेटे की इच्छा थी और तुम्हारी यह इच्छा पूरी हो गई लेकिन अपनी इस हार पर इसलिए खुश हूँ कि जीत मेरे मुकाबले पर किसी अन्य की नहीं वरन् तुम्हारी हुई है।"

उसने मुस्करा कर शकुन्तला को देखते हुए कहा था—

'और तुम्हारे मुकाबले में हार कर में इस हार को हमेशा जीत समझता रहूँगा। ईश्वर करे तुम हमेशा इसी प्रकार इस संसार में जीतती ही चली जाओ तुम्हारी जीत ही जीत हो और मैं सदैव हारता रहूँ—लेकिन तुम्हारे मुकाबले पर—हां!'

उसने अपने नवजात शिशु का माथा चूमते हुए कहा, "हम इसका नाम अजीत रखेंगे।"

और उसकी धर्मपत्नी शकुन्तला मुस्कराते हुए बोली, 'अरे! यह मेरा   तुमने कैसे छीन लिया जी?"

"क्या मतलव?"

"मैंने भी यही नाम सोच रखा था !"

"अच्छा।"

हां।"

शकुन्तला बोली, "कसम से मैंने यही सोचा था कि यदि हमारे यहां बेटा होगा यानी कि मेरी जीत होगी, मैं रजीत नाम रखूंगी और यदि तुम जीत जाओगे तो तुम्हारी जीत का नाम 'ज्योत्स्ना' होगा।"

"यह भी इस बात का प्रतीक है कि हम दोनों के विचारों में कितनी समानता है।"

"वह तो है ही," शकुन्तला मुस्कराई, "यदि ऐसा न होता तो हमारी शादी ही न होती। याद है तुम्हें कि हम कितनी कठिन राहों से गुजर कर एक हुए थे यदि हमारे दिलो में समानता की भावना न होती तो कभी हम एक हो सकते थे भला ?"

और फिर दुर्गेशचन्द्र उसी क्षण अपने भूतकाल के पृष्ठों में लीन हो गए।

"यह तू क्या उल्टा सीधा लिखा करता है, बेटा !"

प्रातः ही उसकी मा ने उसकी मेज पर चाय का प्याला रखते हुए कहा। उसकी मा के लहजे शिकायत भी थी, मलाल भी था और बेजारी भी। उसके लहजे में इस ख्याल की तकरार भी थी कि वह केवल अपना समय नष्ट करता है और अपनी मूल्यवान उम्र को व्यर्थ में इन चीजों मे पडकर, मिट्टी में मिला रहा है। इससे न तो, उसे जीवन का कोई मकसद ही प्राप्त हो सकता है और न कभी वह सुख-चैन की रोटी ही अपने लिए प्राप्त कर सकता है।

उसने अपनी माता को अपना कलम रोककर बड़े दुख के साथ देखा।

"ठीक है मां।"

इसके दिल से जैसे कि हूक निकल गई हो, वह केवल इतना ही कहकर रह गया। और वह कह भी क्या सकता था। गरीब मां की बात थी, और वह बात भी मां की थी। यद्यपि उसे क्रोध तो इतना आया था कि यदि उसे इतनी चुभीली बातें किसी अन्य की ओर से कही गई होतीं तो वह उस मनुष्य का मुंह नोच लेता। वह झपटकर बड़ी-से-बड़ी हस्ती का गरेबान पकड़कर झकझोर डालता और उससे कहता—

"तुम मूर्ख, गधे, बुद्धू मेरी इस लगन और परिश्रम को व्यर्थ बतला रहे हो! यदि यह व्यर्थ है और यदि साहित्य और कला की लौ व्यर्थ का स्तर रखती होती तो आज संसार में मूर्खों का अधिपत्य होता और संसार शिक्षितों की योग्यता से रहित होकर उसी 'पत्थर काल' के अन्धकार में भटकता रहता और साहित्य की वृद्धि न होती तो संसार में कुछ न होता। जिस देश में अपना साहित्य नहीं तो उसमें फिर क्या है? देशों का सम्मान, शान और ऐश्वर्य वहां के साहित्य से जाना जाता है। जिस देश का साहित्य जितना उन्नत होता है, वह देश और समाज उतना ही उन्नतिशील कहलाता है।

यदि साहित्य व्यर्थ का धन्धा होता तो आज संसार में न कीट्स होते, न शैले, न शैक्सपीयर, न बर्नाडशाह, न हाफिज, न ख्याम, न सैदी, न कालिदास, न तुलसीदास, न टालस्टाय और न गोर्की होता। न मोपासां, न चेखव और न अली ज़ोला, न मीर न गालिब, न इकबाल, न दयाशंकर नसीम, न प्रेमचन्द होते और न शरत्चन्द्र होते। इनमें से कोई न होता और हमें देशों की सभ्यता, उनकी संस्कृति और उनकी अच्छाई-बुराई से कोई परिचय न होता और हम सब मूर्ख ही रहते। यदि संसार में केवल उदर-पूर्ति ही करते रहते तो हम सब मानव न होकर पशु होते—पशु जो केवल मेहनत करता है, पेट भरता है और बच्चे पैदा करता है और बस।"

उसका पिता भी उससे इस प्रकार की बातें किया करता था और

आज उसकी मां ने भी इसी प्रकार की बात की थी। इसके दिल पर बहुत ठेस पहुंची, उसने चाय न पी। उसने अपनी मां से इस विषय में कोई बात-चीत भी न की।

उसने अपना लिखना बन्द कर दिया, वह एक कहानी लिख रहा था। उसने इस कहानी के क्लाइमैक्स को भी छोड़ा और एक पत्र लिखने बैठ गया। उसने अपने पिता को एक पत्र लिखा—

"पिताजी नमस्ते,

मेरा दिल आज पूर्णरूप से चकनाचूर हो चुका है। मेरे साहित्य से आपको सदैव कष्ट पहुँचा है और आपने मेरी इस उमंग का कड़ा विरोध किया है। आपका विचार है कि मैं साहित्य में पड़कर अपना समय नष्ट करता हूँ आप मुझे सूदखोर बनिए के रूप में देखना चाहते हैं। आपका विचार यह है कि एक के चार और एक के सौ बनाने का गुण सीख लूं और मैं इस गुण को इसलिये नहीं सीख सकता क्योंकि मे इसे पाप समझता हूँ यह मेरी दृष्टि मे गुनाह है। मै गरीबों का खून चूस कर मोटा नही हो सकता और न मै गरीबो और असमर्थों की आहों और आसुओं से तिजोरी का बोझ बढ़ा सकता हूं। मैं देश का गद्दार बनकर काले बाजार का धधा भी आपके लिए नहीं कर सकता। इसलिये मैं आपका घर छोड़कर हमेशा के लिये जा रहा हूँ और अब मैं कभी नहीं आऊंगा। आज मेरी माता जी ने भी आप ही की तरह मेरे ऊंचे आदर्श का अपमान किया है। मा ने इन ऊंचे आदर्शों को गाली दी है इसलिये अब बात मेरी शक्ति से बाहर हो चुकी है। आप मेरे हिस्से की सारी दौलत मेरे छोटे भाई को दे दीजिये। मैं इस पर अपना न कोई अधिकार समझता हूँ और न मैं कभी इन चीजों पर अपना अधिकार जताने आऊंगा।

आपका नालायक बेटा
दुर्गेशचन्द्र

ग्रोर यह पत्र लिखकर उसने मेज पर पेपरवेट से दबाकर रख दिया ग्रोर फिर वह अपने उन्हीं कपड़ों में अपनी कुछ फाइलें समेट चुपचाप बड़ी शान्ति के साथ घर से निकल गया।

उस समय दुर्गेश की उम्र उन्नीस वर्ष की थी उसने इन्टर पास किया था ग्रोर ग्रब उसका यह बी०ए० का अन्तिम वर्ष था। उसने यह शहर ही छोड़ दिया। लखनऊ को छोड़कर हमेशा के लिये दिल्ली आ गया था।

यहां आकर वह सबसे पहले एक धर्मशाला में ठहरा उ के पास न बिस्तर था ग्रोर न कपड़े ग्रोर जब तन के कपड़ों के सिवाय उसके पास कुछ था ही नहीं तो सन्दूक के होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

उसकी जेब में दिल्ली आकर केवल दो रुपये तीन आने बचे थे। धर्मशाला में थोड़ी देर रुककर, मुंह-हाथ धोकर वह सीधा हिन्दी की उस पत्रिका के दफ्तर पहुँचा, जहां वह प्रया: अपती कहानियां मुफ्त भेजा करता था। उसने इस दफ्तर में पहुँचकर सम्पादक महोदय से अपना परिचय करया "जी मेरा नाम दुर्गेशचन्द्र है।"

"ग्रोह !" सम्पादक उठकर खड़ा हो गया। "अपको अपने दफ्तर में देखकर मुझे बहुत खुशी है।"

उसने बड़े उत्साह से दुर्गेश से हाथ मिलाया ग्रोर फिर इधर-उधर की बातों के बाद सारी बातें हो गई ग्रोर सम्पादक महोदय ने दुर्गेश से कहा—

"यदि आप पसन्द करें दुर्गेश भैया, तो मैं अपने दफ्तर में आपके लिए जगह बना सकता हूँ।"

"यह तो डूबते को तिनके का सहारा वाली बात होगी भैया !" दुर्गेश बोला। "लेकिन मेरे रहने के लिए भी आपको कोई प्रन्बध करना होगा।"

"वह कोई बात नही, दो चार दिन आप मेरे साथ ठहरिए। दुर्गेश भैया! फिर आपके लिए कोई मकान ढूंढ़ लेंगे, यह कौन-सी समस्या है!" सम्पादक ने दुर्गेश से कहा—

"मैं आपको पचास रूपये महीना दे सकूंगा दुर्गेश भैया! अभी तो इतना ही स्वीकार कीजिए फिर आगे देखेंगे!

"बहुत बहुत धन्यवाद।"

और इस तरह अपने घर से निकलते ही दुर्गेश के भाग्य ने साथ दिया और उसे एक जाने पहचाने लेखक होने के नाते काम मिल गया। वह हिन्दी के मासिक 'साहित्य' का सम्पादक हो गया।

उसके घरवालों ने उसे वापस बुलाने की कोई कोशिश न की, जैसे कि उसके घरवालों को उसकी कोई आवश्कता न थी! उसकी कोई परवाह ही न रही हो। उसने भी इसकी कोई परवाह न की कि इसके घरवालों को इसके अचानक चले आने का कोई असर क्यों नहीं हुआ। किन्तु इसे अपने घरवालों से इस व्यवहार से वह अनुभव जरूर हो गया था और उसे यह बात मालूम हो गई थी कि उसके घरवालों की नजरों में इसकी कोई कीमत न थी। और इसलिए उसने घर से अलग होकर ठीक ही किया था इसलिए कि उसकी कोई कीमत न थी तो इस बात का दुःख कैसा कि वह घरवालों से अलग क्यों हो गया?

उसने दिल्ली आकर अपने पिता को तथा मां को कई पत्र लिखे जिसका इसको उत्तर न मिला जैसे कि वह लोग दिल से ही यह चाहते रहे हों कि वह यहां से चला जाये। और यह सोचकर उसको दुःख भी होता था कि उसका अपनों में से भी कोई नहीं है। लेकिन वह शान्ति के साथ अपनी धुन अपने काम और लगन में लगा रहा।

उसने दो वर्ष तक हिन्दी 'साहित्य' में सहायक सम्पादक के पद पर काम किया और फिर इस 'मासिक' की नौकरी त्याग कर अलग हो

गया। इसके सम्पादक और उसमें भिन्नता उत्पन्न हो गई थी।

जब वह लेखक और कवि देश भर में माना जाने और पहचाना जाने लगा ! इसे कवि सम्मेलनों में बुलाया जाता और वह उर्दू के मुशायरों में भी जाता था। वह उर्दू और हिन्दी दोनों भाषाओं का कवि और लेखक था। इसे हिन्दी की तरह उर्दू भी बड़ी अच्छी आती थी और उसे दोनों ही भाषाओं से बड़ा प्रेम था। और वह दोनों ही भाषाओं से समान प्यार करता था। वह उनमें कोई अन्तर न ससझता था।

मासिक हिन्दी साहित्य से अलग होकर दुर्गेश ने दो वर्ष तक किसी जगह नोकरी नहीं की। वह अपनी गुजर कला के सहारे करता रहा। उसकी कविताओं, गजलों और नज्मों और कहानियों का उसे कोई मुआवजा नहीं मिलता था। किन्तु मुशायरों, कवि सम्मेलनों से कमा लेता था और कभी कभी किसी-न-किसी पत्रिका से उस अपनी कहानियों का कुछ मूल्य भी जरूर मिल जाता था और इस तरह इसकी गुजर हो रही थी। उसने बड़े परिश्रम से पहला उपन्यास 'संयोग' लिखा। इसस पहले इसकी कहानियों के दो संग्रह छप चुके थे। और इसकी शायरी का भी एक संग्रह उर्दू में छपा था। और साथ-ही-साथ उसकी हिन्दी का भी संग्रह छपा था।

हिन्दी और उर्दू में कहानियों के सग्रहों को इसने केवल डेढ़ सौ रुपये में छापने का अधिकार पब्लिशर्ज को दे दिया। यानी हिन्दी के पब्लिशर्ज ने इसे दो सग्रहों के अस्सी रुपये दिये और इसी प्रकार उर्दू में दो संग्रहों का मूल्य इसे सत्तर रुपये भी मिला था। उर्दू में इसकी शायरी का संग्रह इस शर्त पर छापा था कि इसे इसकी बारह प्रतियां मुफ्त मिल जायेंगी और हिन्दी के पब्लिशर्ज ने भी इसकी कविताओं का संग्रह इसी शर्त पर ले लिया था कि बारह प्रतियां इसे वहां से भी मुफ्त मिली थीं। किन्तु पब्लिशर्ज ने इसके इस उपन्यास 'संयोग' के इसे

दो सौ रुपये हिंदी और उर्दू के लिए दे दिये थे और उसका यह उपन्यास दोनों भाषाओं में एक समान प्रसिद्ध था।

और प्रकाशक ने इसकी इस मस्तिष्क उपज से हजारों रुपये कमा लिये थे। और इसे मूल्य के स्थान पर केवल 'नाम' मिला था और वह जमाने के इस ढंग को देखते हुए इसी में खुश था।

फिर दो वर्ष बाद इसे हिन्दी के एक साप्ताहिक में उप-सम्पादक का पद प्राप्त हो गया। इसे इस पद पर ७५ रू० मासिक मिला करते थे उसने यहां भी दो बर्ष तक कार्य किया और फिर इसे इस जगह से अलग कर दिया गया। कारण वही मतभेद का था। इसे अंग्रेजों से बहुत अधिक घृणा थी और अपने देश से प्रेम था और इस 'साप्ताहिक' के मालिक को रूपये के सिवाय और किसी से प्रेम न था इसलिए वह यहां से एक आर्टीकल के लिखने के जुर्म मे निकाल दिया गया।

लेकिन अब इसका नाम बहुत ऊंचे आदर्श के साथ प्रसिद्ध हो चुका था और उसने उपन्यास लिखने शुरू कर दिए। उसके उपन्यास उर्दू और हिन्दी में बहुत प्रसिद्ध हो रहे थे और हर जाति में पसन्द किए जाते थे !

अब इसके ये उपन्यास कौड़ियों के मोल नहीं बिकते थे वल्कि अब हिन्दी के अपने एक उपन्यास के दो सौ रुपये लेता था और उर्दू के भी एक उपन्यास के १५० रुपये मिलते थे। इस तरह इसका एक उपन्यास ३५० रुपये की रकम दिला देता था।

अब उसका जीवन बडे आनन्द से गुजर रहा था, अब वह किसी का नौकर नही था घर पर बैठकर ही काम करता था और अब यह वह जमाना था कि विदेशी शासक और कांग्रेस में बड़ा तनाव था वह अंग्रेजों का कठोर दुश्मन था और वह यह नहीं चाहता था कि उसके प्यारे देश पर विदेशी शासक इसी तरह शासन करते रहें। इसलिये

उसने खुलकर अंग्रेजों का विरोध किया और अपने मकसद के लिए उसने एक 'साप्ताहिक' पत्र निकाला। इसके इस पत्र का नाम ताबीर' था। और उसका यह साप्ताहिक पत्र ताबीर हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं में छपता था।

और उसने छपते ही अच्छी-खासी प्रशंसा और प्रसिद्ध प्राप्ता कर ली और आत्मनिर्भर हो गया। और अब दुर्गेश को उसकी माली उलझन से छुटकारा मिल गया और यह साप्ताहिक बड़ी शान-शौकत से चलने लगा।

दुर्गेश के कलम में बड़ी जान थी और लिखने का ढंग भी आता था वह जानता था जिस जाती का शासन है वह बड़ी चालाक, होशियार और मक्कार जाति है। वह किसी भी समय इस 'ताबीर' का गला घोंट सकती है इसलिए वह बड़ी समझदारी से नोट्स और निबन्ध लिखता था और कानून की जद से और इसकी गफलत से वह सदैव बचता रहता था! लेकिन जैसे किसी शायर ने कहा है कि—

"बिगडती है जिस वक्त जालिम की नीयत
नहीं काम आती दलील और इज्जत।"

जालिम के जुल्म का शिकार हो ही गया!

उसके इस 'ताबीर' से पांच हजार की जमानत मांगली गई और वह बिलबिलाता रह गया।

उसके पास पांच हजार की इतनी बड़ी रकम का कोई इन्तजाम न था! वह सोच में पड़ा हुआ था। उसे अपने इस 'ताबीर' के बन्द हो जाने का बेहद दुःख हो रहा था कि एक लड़की लगभग शाम के सवा चार बजे इसके दफ्तर में आई।

"सुनिए," वह आते ही बोली, "क्या मैं आपसे केवल पांच मिनट ले सकती हूं?"

"जरुर-जरुर' वह जो कि अपने दफ्तर में दस-पांच हजार की चिन्ता में बहुत परेशान बैठा था बुझे दिल के साथ बोला ! "बैठिए !'

और वह लड़की उसकी मेज के सामने ही उसके आगे की खाली कुर्सी पर बैठ गई।

"यह लीजिए ।"

उसने दुर्गेश की ओर एक लिफाफा बढ़ाया, वह समझा कि इसमें कोई निबन्ध, कहानी या कोई कविता होगी जिसे छपवाने के लिए यह लड़की लेकर आई है। उसने हाथ बढ़ाकर लिफाफा ले लिया। लिफाफा उसे काफी भारी लगा। उसने सोचा इसमें अवश्य कोई लम्बी कहानी या निबन्ध होगा, लिफाफा बन्द था। इसने इसे हाथ में लेकर उसी जगह कलमदान के पास रख दिया ! बोला—

"इस मेहरबानी का बहुत-बहुत धन्यवाद, मिस !"

और वह प्यार से बोली, "मेरा नाम शकुन्तला है।"

"धन्यवाद," दुर्गेशचन्द्र बोला, "हां तो मिस शकुन्तला आप चिन्ता न कीजिए मैं आपकी कहानी या निबन्ध जो भी इसमें होगा पढ़ लूंगा और फिर यदि यह छपने के योग्य हुआ तो जरूर छाप दूंगा।"

वह कुछ उलझते हुए बोला, "लेकिन चूंकि मैं व्यस्त अधिक हूँ इसलिए उत्तर में कुछ देर लगेगी। क्षमा कीजिएगा।"

फिर वह तुरन्त बोला, " 'कहानी' या 'निबन्ध' पर आपने अपना पता लिख दिया न !"

और वह इस बात का जवाब न देकर बोली--

"इसे आप इसी समय खोलकर देख जरुर लीजीएगा, हो सकता है कि इसमें जो भी वस्तु हो वह आपके लिए और इस 'तावीर' के लिए परम आवश्यक हो।"

वह उठकर खड़ी हो गई—जाते हुए बोली—

"ग्रौर यह बहुत ग्रावश्यक है इमी समय खोलकर देख ग्रवश्य लीजिए। चाहे एक नजर ही सही प्लीज ...।"

ग्रौर यह कहकर वह चली गई। उसके जाने के बाद दुर्गेशचन्द्र बड़बड़ाया, "इस समय मेरे लिए ग्रौर इस 'ताबीर' के लिए भी पांच हजार के नोट बहुत जरूरी हैं। इसलिए कि यदि वह न हुए तो 'ताबीर' की ग्रगली प्रति छप ही न सकेगी।

वह कुछ देर उदास ग्रौर खामोश बैठा रहा ग्रौर सोचता रहा कि ये पांच हजार रुपये ग्राखिर वह ला भी कहा से सकता है। उसने सिगरेट केश से एक सिगरेट निकाला ग्रौर ठंडी सांस भरते हुए उसने सिगरेट ग्रपने होंठों में दबा लिया उसकी ग्रांखें स्वतः ही उस लिफाफे पर गई ग्रौर उसका हाथ सिगरेट जलाने से पूर्व उस लिफाफे पर गया ग्रब दियासलाई की जगह वह लिफाफा उसके हाथ में था उसने लिफाफा खोला। ग्रौर एकदम उसके मुख से निकला।

ग्ररे, ग्रौर वह ग्रपनी कुर्सी पर से उठ कर बड़ी हैरानी की हालत मे खड़ा हो गया सिगरेट उसके होंठों से मेज पर गिरा ग्रौर फिसलता हुग्रा मेज मे नीचे फर्श पर गिर गया था ग्रौर उसमें से सौ-सौ के कई नोट सरक कर मेज पर गिर गये थे।

वह बड़ी हैरानी ग्रौर खुशी की मिली जुली हालत के साथ दुबारा कुर्सी पर बैठ गया, उसने वह लिफाफा जिसे कि उसने बड़ी बेतरतीबी के साथ फाड़ डाला था फिर उठाया।

उसमें तो सौ-सौ के नोटों की एक पूरी गड्डी थी उसने जल्दी-जल्दी वो सारे नोट गिने सौ-सौ के पचास नोट थे यानों कि पूरे पांच हजार रुपये। वह ग्राश्चर्य से इन नोटों को देख रहा था। इस लिफाफे में नोटो के साथ एक पत्र भी रखा था वह बड़ी बेचैनी से यह पत्र पढ़ने लगा, लिखा था कि—"श्री दुर्गेशचन्द्रजी, नमस्ते !

आप मुझे अवश्य नहीं जानते लेकिन मैं आज से नहीं वर्षों से आपको रचनाओं के द्वारा जानती, मानती और आपका सम्मान करती हूँ मैंने आपके सब उपन्यास पढ़े हैं मैंने आपकी हर कहानी बड़े चाव और प्रेम से पढ़ी है, आपकी कविताएं और उर्दू शायरी की भी दिल से दिलदादा हूँ। मैंने आपकी शायरी मुशायरों में भी सुनी है। आपकी शायरी को गुनगुनाया भी है। आपकी हर पुस्तक मेरे पुस्तकालय की शान है।

मै आपके 'ताबीर' को भी हर सप्ताह पाबन्दी के साथ पढ़ती हूं। मेरे और आपके विचारों में कोई अन्तर नहीं है ऐसा लगता है कि वह आवाज जोकि मेरे दिल में है वह आपकी कलम और जबान से निकलती है।

मैंने अखबारों में पढ़ा है कि आपके इन ऊंचे विचारों को और इस आदर्श में डूबी हुई लगन और उमंग को अंग्रेजों की ये कूटनीति 'ताबीर' को खत्म कर देना चाहती है, लेकिन ऐसा नहीं होगा और ऐसा होना भी नहीं चाहिये। इसलिये जमानत की यह पांच हजार की छोटी रकम उपस्थित है। इसे 'ताबीर' की ओर से इस मनहूस ब्रिटिश शासन के मुंह पर दे मारिये।

'ताबीर' आपका ही नहीं वरन् हम सबका है और इसे अधिकार और न्याय की पुकार उठाते रहने के लिये जीवित रहना चाहिये। ये हमारी जीवन की तरह हमारा प्यारा साप्ताहिक पत्र है। इसे उर्दू और हिन्दी दोनों भाषाओं में इसी तरह एक साथ निकलते रहना चाहिये जिस तरह कि हम हिन्दू और मुसलमान देश की स्वतन्त्रता के लिये सिर पर अपने-अपने कफन बांधकर निकलते हैं।

इस दुष्ट शासन की मांगी हुई हर जमानत में अपनी ओर से दे रही हूँ। आप इस ओर कोई चिन्ता न कीजियेगा। और हां मेरा नाम

तो आपको मालूम ही हो गया है लेकिन मेरा पता लगाने की कोशिश में आप मेरे नाम का ऐलान ईश्वर के लिये हरगिज न कीजियेगा। यह इसलिये नहीं कि मैं इन विदेशी शासकों से डरती हूँ वरन् कि इसमें एक बहुत बड़ा राज है।

आपकी शकुन्तला

दुर्गेशचन्द्र ने इस पत्र को एक बार नहीं वरन् बार-बार पढ़ा और हर बार इसको पढ़कर इसमें एक नई उमंग तथा जोश पैदा हुआ। जोश और खुशी के आंसू उसकी आंखों में आये और बार-बार आये और आते रहे और उसने अपने इन आंसुओं को रोकने की कोशिश अपनी ओर से नहीं की।

उसका दिल उसके पहलू में शकुन्तला जैसी आदर्श लड़की के लिये नत-मस्तक था और दिल भी प्रेम में धड़कता रहा।

और फिर कोई महीने बाद ही दुष्ट शासन ने 'ताबीर' की हिन्दी और उर्दू दोनों प्रकाशनों को एकदम बन्द कर दिया। भारतीय सुरक्षा की आड़ लेकर दुर्गेशचन्द्र को बिना मुकदमा चलये एक असीमित समय के लिये बन्दी बना दिया गया।

इसे दिल्ली सेन्ट्रल जेल से तबदील करके गोंडा जिला में भेज दिया और जिस समय वह वहां ले जाया जा रहा था तो शकुन्तला वहां मौजूद थी। उसने दुर्गेशचन्द्र से मुलाकात के लिये बड़ी कोशिशों के साथ बड़ी रिश्वत देकर केवल सात मिनट का समय ले लिया था।

उसने दुर्गेशचन्द्र को देखते ही अपने दोनों हाथ जोड़ लिये और उत्तर में उसने भी ऐसा ही किया। शकुन्तला बोली—"आपका आदर्श मेरी नजरों में और ऊंचा हो गया है दुर्गेशचन्द्रजी। आप दुष्टों की इस कैद से घबराइयेगा नहीं। मैं ही नहीं वरन् मेरे जैसी कितनी ही हस्तियां आपके साथ हैं। और आपके नाम की जय-जयकार होती है।

मेरा यह विश्वास है कि विदेशी शासन की मौत के दिन करीब आ चुके हैं अब हमारे प्यारे देश के आजाद होने में अधिक देर नहीं है।"

"मुझे भी इसका विश्वास है मिस शकुन्तला," दुर्गेश ने मुस्कराते हुये कहा, "आप मेरे कदमों में लड़खड़ाहट उस समय भी न पायेंगी जिस समय कि यह दुष्ट शासन मुझे फांसी के तख्ते पर ले जा रहा होगा।"

"ईश्वर न करे," शकुन्तला के ढंग में बेचैनी थी।

और फिर कोई साल के अन्दर ही दुर्गेश को छोड़ दिया गया।

दुर्गेश छूटने के बाद सर्वप्रथम जिसके घर आया वह वही शकुन्तला थी। दुर्गेश की आंखें शकुन्तला को देखकर चमकने लगी। उसने शकुन्तला से पूछा—

"एक बात आप बताएंगी।"

"आपकी हर बात बताऊंगी।"

"आपने अपना पूरा परिचय कभी नहीं कराया।"

"इसके लिये समय ही न मिला और न ही मौका ही पड़ा।" उसने संजीदगी से कहा—बहरहाल अब मै अपना पूरा परिचय कराये देती हूँ। उसने दुर्गेश को बताया—

"मेरा नाम शकुन्तला है यह तो आप जानते ही हैं अब और अन्य बातें भी जान लीजिये।" उसने दुर्गेश को गौर से देखते हुये कहा—

"मेरे पिताजी का नाम रायबहादुर गंगाधर है।

और दुर्गेश एकदम बोल पड़ा, "रायबहादुर गंगाधर की बेटीहैं आप !"

"चौंकिए मत दुर्गेश साहब," शकुन्तला बोली। "इसलिए तो मैंने आप से यह ख्वाइश की थी कि आप मेरा नाम न छाप दीजिएगा जैसा कि आपको मालूम है मेरे पिताजी अंग्रेजों के साथी और इनके बहुत बड़े मित्र हैं। लेकिन वह तो आपने कहावत सुनी ही होगी कि देवता के घर राक्षस और राक्षस के घर देवता जन्म लेते हैं। इसी तरह देश के गद्दार बाप के घर पैदा हो गई हूँ और आपको यह जानकर शायद आश्चर्य होगा कि मेरी एक बहिन और है जो पिताजी के विचारों की हामी है। और यह भी मजे की बात है दुर्गेश जी कि

हम दोनों जुड़वां बहिनें हैं।"

"कोई भाई नहीं है ?"

'जी नहीं, हमीं दोनों बहिनें हैं।"

"और ये रायबहादुर गंगाधर देश के बड़े धनिकों में से एक हैं। अंग्रेजों के खानदानी मित्र और हमदर्द और इनकी ये करोड़ों और अरबों की दौलत इसी अंग्रेजी दोस्ती के कारण से है।"

दुर्गेश, शकुंतला के बारे में सोच-सोचकर हैरान हुआ जा रहा था कि वह बोली, आप किसी गहरे सोच में डूब गये हैं। कहीं मेरी तरफ से आपके दिल में घृणा की लहर तो नहीं उठने लगी।"

और वह एकदम चौंक पड़ा।

कैसी बातें करती हैं आप ?' उसने प्यार भरी नजरों से शकुंतला को देखा, "आप तो इस योग्य हैं कि आपकी पूजा की जाये।"

'पूजा के योग्य तो आप हैं" यह शकुंतला के दिल की आवाज थी। 'कितने महान कितने ऊंचे और कितने गुणवान हैं आप।"

वह दुर्गेश को देखे जा रही थी। "आपके साहित्य पर तो मैं मरती हूं। आपकी शायरी मेरी आत्मा की पुकार है और आपके विचार मेरे दिल की भावना की प्यास बुझाते हैं।"

और फिर उसने पूछा, "जेल में तो आपने बहुत कुछ लिखा होगा।"

"हां!"

उसने ब्योरा दिया।

...जेल की चारदीवारी से मैंने बहुत कुछ पाया है मैंने लगभग वर्षभर रहकर एक उपन्यास लिखा है जिसमें अंग्रेजों के लिये जहर-ही-जहर भरा है और यह मेरी अपनी नजरों में मेरा "मास्टरपीस नाविल" है छः कहानियां भी मैंने लिखी हैं जो सब की सब इसी

स्वतन्त्रता की लड़ाई के विषय में है बहुत सी नज्में, गजलें और मेरे गीत इसी विषय में हैं। वह मुस्कराया। "तो फिर ये चीजें अब छपवाना शुरू कीजियेगा।" शकुंतला बोली।

"मेरी इन चीजों को कोई छापने के लिये तैयार न होगा, मिस शकुंतला।"

"तो फिर उन चीजों को आप स्वयं छापिये।"

और अभी दुर्गेश का मस्तिष्क इस विचार की उलझनों से दो चार हुआ ही था कि वह इन उलझनों से उसके मस्तिष्क को आजाद कराते हुये बोली।

"रुपये की चिन्ता आप विल्कुल न कीजिये, यह मेरा जिम्मा रहा। आप तो फिर से काम शुरू कीजिये। बल्कि अब के आप एक 'डेली' पेपर निकालिये उर्दू में भी और हिन्दी में भी और अपना पब्लिशिग हाउस आप खुद कायम कीजिये। और अपनी पुस्तकें स्वयं छापिये। किन्तु" और अभी वह कुछ कहने ही जा रहा था कि वह बोला।

"कि मेरी अपनी भी यही उमंग है।"

और वह फिर धीरे से बोली, "हम अब गैर नहीं हैं। मेरे दिल और दिमाग ने तो कब से आपको अपना समझ रखा है बशर्ते कि अपने देवता की ओर से मैं ठुकरा न दी जाऊं और वह जैसे कि स्वप्न और वह भी एक शानदार स्वप्न देखते देखते एकदम चौंक पड़ा हो। मायूसी से बोला, "हमारे बीच हिमालय से भी ऊंची एक दीवार खड़ी है।"

और वह एकदम बोली, "यदि दृढ़ निश्चय हो तो दीवारें स्वतः ही टूट जाती हैं और दो दिलों की चाह के आगे हिमालय भी रेत का ढेर बन जाता है।"

"लेकिन आपके पिता।"

ग्रौर वह निःसंकोच बोली, "ये बातें पिताजी के ऊपर मैं छोड़ू तब न।"

"लेकिन ये ग्रापकी एक इतनी बड़ी कुर्बानी होगी, एक इतना बड़ा बलिदान होगा ग्रापकी तरफ से जिस पर मेरा दिल मुझे हमेशा बुरा कहता रहेगा। ग्रापके पिताजी ग्रपनी इतनी बड़ी दौलत से ग्रापको ग्रवश्य ग्रलग कर देंगे।"

"कैसी बातें ग्राप करते हैं," वह बोली, "सबसे बड़ी दौलत दिल की शान्ति है ग्रौर यह शान्ति ग्रापकी स्वीकृति में है।"

वह गदगद स्वर से बोली—

"ग्राप तो बहुत बड़े कलाकार हैं ग्रौर कलाकार का हृदय कोमल होता है ग्रौर उसके दिल में ग्रहसान की बहुत बड़ी दुनिया बसी होती है मैं ग्रापको उसी एहसास का वास्ता देकर ग्रापसे बिनती करती हूँ कि ग्राप मेरी इस सबसे बड़ी इच्छा का गला ग्रपने इंकार से न घोंटिये। ग्रापकी सेवा ग्रौर ग्रापका जन्म जन्म का साथ ही मेरी सबसे बड़ी इच्छा ग्रौर खुशी है।"

वह होंठ दबाते हुये बोली—

"ग्रौर ग्रब मेरी इससे बड़ी खुशी का दारोमदार ग्राप पर है चाहे तो जिला लीजिये चाहे चिता पर पहुँचा दीजिये।"

ग्रौर दुर्गेश हैरान, परेशान होते हुए इसकी हालत पर दुःख प्रकट करने लगा ग्रौर बोला—"ग्राप जान बूझकर मेरा मतलब है कि ग्राप मुफ्त में मुझे ग्रपना जीवन-साथी बनाकर ग्रपनी शानदार खुशी ग्रौर जीवन को दुखो, मुसीबतों ग्रौर चिन्ताग्रों को सौंप देंगी।"

"ग्रापका साथ ग्रौर ग्रापकी सेवा ही मेरी खुशी ग्रौर मेरी शानदार जिन्दगी है।" ग्रौर फिर इन दोनों ने रजिस्ट्रार के दफ्तर में जाकर ग्रपने नये जीवन की नींव रखी। रजिस्ट्रार के दफ्तर में जाकर

रखी गई नींव ने धनिकवर्ग की नीवें हिलाकर रख दीं। धनिकवर्ग के माथे पर ...... घृणा, प्रतिशोध और झुंझलाहट की इतनी शिकनें उभरीं कि इमारत का चेहरा खौफनाक और भयानक दिखाई देने लगा।

शकुन्तला के अरबपति बाप ने अपनी चहेती और लाड़ली पुत्री के मुंह पर एक जोर की चपत लगाई और गला फाड़कर चिल्लाया, "तूने मेरे मुंह पर थूका है, तूने मेरी आन और इतनी बड़ी इज्जत पर कलंक लगाया है। तूने मेरी नाक नाली में घुसेड़ दी है, तूने वह किया है जो कि मेरा शत्रु भी मेरे साथ नहीं कर सकता।"

शहर ही नहीं वरन् इस देश का माना और जाना पहचाना धनिक गंगाधर जख्मी सांप की भांति बल खा रहा था और तड़प रहा था तथा फुंकार रहा था। वह अपने बाल नोंच रहा था और अपने मुंह पर चपत लगा रहा था वह दांत पीसते हुए गरजा—"दूर हो जा तू, कमीनी, आवारा, बदचलन, पापिन कहीं की, दूर हो जा मेरी नजरों के सामने से नहीं तो मैं....नहीं तो मैं....।"

"वह झाग थूकने लगा, "नहीं तो मैं तुझे जान से मार दूंगा।" वह जोर से चिल्लाया।

"भगवान कसम खून कर दूंगा तेरा।"

और शकुन्तला धीरे से बोली—"मेरी एक बात तो सुन लीजिये पिता जी!"

और वह इसे एक जोर से धक्का देते हुए गरजा--"अब और भी कुछ सुनाने को शेष है ?"

"हां पिता जी।"

और वह अत्यन्त क्रोध से बोला—"अब क्या तू मुझे ये सुनाएगी कि तू एक हरामी बच्चे की मां बनने वाली है ?"

और यह सुनकर शकुंतला का चेहरा क्रोध से तमतमा उठा वह एकदम आग उगलते हुये चिल्लाई--' पिताजी, आप इतने अंधे हो गए हैं कि आपको एक वेश्या और एक शरीफ कुमारी लड़की में कोई अन्तर नजर नहीं आता।" वह दांत पीसते हुये बोली—"यदि आप मेरे पिता न होते तो मैं आपकी इतनी बड़ी कमीनगी पर आपके मुंह पर थूक देती--मैं गला घोंट देती आपका। मैं आपको जान से मारकर भी यही समझती कि अभी तक आपकी दुष्ट वाणी की सजा आपको पूर्ण रूप मे नहीं मिल सकी।"

"मैं तुझे अपनी सम्पत्ति से अलग करता हूँ, तू निकल जा मेरे कमरे से दूर हो जा मेरी नजरों के सामने से।"

और वह अपने बाप की इस धमकी पर थूककर नफरत से बोली "बस यही अन्तिम तीर था आपके पास ? कभी तो दौलत की पट्टी अपनी आंखों मे खोलकर बात किया कीजिये।" शकुन्तला बोली। "धन, धन, धन, न जाने तुम धन वालों के पास धन के सिवाय और कुछ क्यों नहीं होता धन के लिए तुम धन वाले अपना सब कुछ क्यो नहीं होता धन के लिये तुम धन वाले अपना सब कुछ क्यों बेचते हो ! अपना धर्म, अपनी शराफत, अपनी आन, अपने अरमान और अपना आदर्श तुम लोग धन के लिए ये सब क्यों बेच देते हो आखिर—क्यों ? क्यों ? आखिर क्यों ? किसलिये ?"

वह घृणा और दुःख के साथ बोली, "धन के लिए तुम धन वाले

अपनी मां तक को बेच देते हो, अपने वतन तक को तुम लोग धन की वेदी पर भेंट चढ़ा देते हो।" और यह सब सुनकर गंगाधर ने शकुंतला को एक जोर का धक्का दिया।" दूर हो जा तू मेरी नजरों के सामने से आज से तेरे लिये मैं मर गया हूँ और तू नर्क में चली गई है मेरे घर के दरवाजे तेरे लिये हमेशा के लिये बन्द हो गये हैं।" और यह कह कर उसने धक्का मारकर शकुन्तला को अपने बँगले से बाहर निकाल दिया।

राजमहलों की रहनेवाली और राजमहलों की हर खुशी, हर आराम की आदी शकुन्तला अब एक मामूली से मकान में थी और वह जिसने कभी खुद से पानी भी न पिया था, जिसके एक इशारे पर कई-कई नौकर और नौकरानियां हाथ बांधे हाजिर हो जाते हों अब वह हर काम खुद करती है। वह कभी जिसके हाथ धन दौलत को गिनते गिनते थक जाते थे अब बड़ी सावधानी से एक एक पैसा खर्च करती थी और हरदम यह सोचती रहती थी कि यदि ये पैसे खत्म हो गये तो फिर क्या होगा, कहां से इतने शीघ्र और पैसे आ जायेंगे ?

वह लड़की जिसने आंख खोलते ही यह देखा हो कि दुनियां में आराम के अलावा और कुछ नहीं है, अब यह देख रही थी कि इस जमीन पर सिवाय दुख के और कुछ नहीं है, हर तरफ दुख ही दुख की नदियां बहतीं हैं और इन्हीं दुख की नदियों में ये धनवाले अपनी सुख की नैया तैराते रहते हैं दुखों की ही तो छाती पर ये पैसे वाले अपनी सुख की चक्की चलाते हैं, मुस्कराते और हंसते हैं और उन्हें इसका एक जरासा

भी अनुभव नहीं होता कि जिनकी छातियों पर वह अपनी भारी भारी पाटों वाली चक्कियां चला रहे हैं वे भी इन्हीं की भांति दुःख, सुख और शोक का अनुभव करने वाले मानव हैं।

हजारों, लाखों और करोड़ों मानवों के अरमानों का खून होता है जब कहीं ये चन्द मुट्ठी भर धनिकों के आराम उन्हें मिलते हैं। रातों-रात भर सैंकडों मानवों के घरों में अंधेरा रहता है जब कहीं दो चार पूंजीपतियों के घर रोशनी से जगमगाते हैं। हजारों झोंपड़ों की जिन्दगियां दुखी होती हैं तब कहीं जाकर दो चार दस महलों की जिन्दगियों में शहद घुलता है और अमृत रस टपकता है और हजारों इन्सानों की हड्डियां टूटती हैं जब इन पर धनिकों के आलीशान महल बनते हैं। ये आलीशान भोजन जभी तो होते हैं जब सैंकडों गरीब इन्सानों के पेट रात रात भर बेचैन रहते हैं जब सैंकड़ों अनजान बच्चे दूध की एक एक बूंद को तरसा दिये जाते हैं जब कहीं जाकर रईसों के कुत्तों को दूध मिलता है और वह फूल फूलकर कुप्पा बनते हैं। ये गरीब इन्सानों के खून की ही सुर्खी है जो अमीरों के गालों पर झलकती है। जब रास्ते की धूल और मिट्टी गरीबों के जिस्मों पर खप जाती है जब कहीं जाकर धनवानों के चेहरे मूल्यवान और खुशबूदार पाउडरों से महक उठते हैं। जब किसी के अरमानों का खून होता है तब कहीं जाकर किसी के होठों की सुर्खी सजती है।

अब शकुन्तला ने यह सब दूर से नहीं देखा था बल्कि अब वह खुद इन हालतों से गुजर रही थी। और दुर्गेश दिन रात इस बात से कुढ़ रहा था कि केवल इसकी वजह से एक लड़की की अच्छी भली जिन्दगी तबाह हो गई।

आखिर उसने एक दिन शकुन्तला से अपने दिल की इस घुटन को प्रकट कर ही दिया।

"मैं तुमसे बहुत शर्मिन्दा हूँ शकुन्तला।"

"किसलिए तुम मुझसे शर्मिन्दा हो दुर्गेश ?"

"इसलिये कि केवल मेरे कारण तुम्हें ये दिन देखने पड़े।"

"कैसे दिन ?"

"दुख के दिन, सुख के तुम्हारे दिनों को तुमसे छीनकर मैंने ये दुःख के दिन सौंप दिये हैं, तुम्हारी खुशी की रातों को तुमसे छीनकर मैंने ये जीवन की अंधेरी और लम्बी रातें तुम्हें दे डाली हैं। मैंने तुम्हें वह दुर्भाग्य सौंपा है, जिसकी तुम आदी न थीं। राजमहलों की एक कुमारी को मैंने दासी का रूप देकर एक बहुत बड़ा और अक्षमय पाप किया है। मैं तुमसे बहुत शर्मिन्दा हूँ—शकुन्तला।"

दुर्गेशचन्द्र की आंखों में आंसू आ गए, वह रुंधे गले से बोला—

"मैंने इतना बड़ा पाप किया है जिसका कोई प्रायश्चित नहीं है। मैंने एक देवी को उसके ऊँचे स्थान से उठाकर एक गन्दी नाली में फेंक दिया है अत्याचार किया है मैंने, और भगवान सबको माफ करता है परन्तु अत्याचारी और दुष्ट को कभी माफ नहीं करता।"

शकुन्तला उसकी तरफ प्यार से देखकर मुस्कराई। "यह मैंने कब नहीं माना कि तुम एक बहुत बड़े कवि, शायर, लेखक और एक ऊंचे किस्म के इन्सान हो फिर यह अपनी योग्यता का रोब जमाने की क्या जरूरत पड़ गई तुम्हें, मिस्टर दुर्गेशचन्द्र। जो तुम इतनी खूबसूरत किस्म के वाक्य बोलने लगे।"

उसने दुर्गेश के सामने हाथ जोड़े और मुस्कराते हुये बोली, "मानती हूँ बाबा, मैंने तुम्हें कलाकार कब नहीं माना और मैंने तुम्हारी योग्यता और तुम्हारी कला की खूबसूरती पर कभी सन्देह किया होता तो तुम्हें जरूरत थी कि तुम....।"

श्रोर दुर्गेश इसकी बात काटकर बोला, "तुम मेरे इस सच्चे विचार को हँसी में उड़ाने की कोशिश न करो, शकुन्तला।" दुर्गेश बड़े दुःख के साथ बोला, "मैंने वास्तव में तुम्हारे ऊपर बहुत बड़ा अत्याचार किया है।"

"अत्याचार तो जब होता मिस्टर मेरे···।" शकुन्तला ने दुर्गेशचन्द्र के गाल पर प्यार की एक हलकी-सी चपत लगाते हुये कहा "जबकि तुम जबरदस्ती मुझे उठा लाये होते। यह बात जब मैं सब सच मान लेती जब तुमने अपने तौर पर मुझे खुद प्यार और प्रेम का लालच देकर प्यार का छल-कपट किया होता, समझे जब तुमने मुझे धोखा दिया होता कि हीरा-जवाहरात के ढेर पर मुझे बिठा दोगे, तब मैं तुम्हारी यह बात मान लेती।"

लेकिन यह बात यूं नहीं बल्कि यूं है कि मेरे पतिदेव महाराज कि मैने खुद तुमसे प्रेम किया और मैं खुद जबरदस्ती करके तुम्हारे गले का हार बन गई और तुम्हे मैंने अधिक उलझनों और कष्टों में फसा दिया। तुमने तो मुझे बहुत रोका था और समझाया था कि मैं राजमहलों की रानी होकर तुम्हारे गले का हार बनने की कोशिश न करूं लेकिन मै खुद ही न मानी और मैंने तुम्हारी बात इसलिये नही मानी कि मुझे मेरे दिल की शान्ति चाहिये थी और मुझे मेरे दिल की शान्ति मिल गई है।" वह मुस्कराये जा रही थी "और मेरी नजरों में मन की शान्ति से बड़ी दौलत अन्य कोई नहीं है।"

"लेकिन।"

श्रोर वह दुर्गेश की लेकिन के आगे कुछ सुनना नहीं चाहती थी इसलिए उसकी बात काटकर बोली।

"तुम इस प्रकार की बातें सोचा ही न करो मेरे प्रेमी।" इसके ढंग में प्यार की कभी न खत्म होने वाली मिठास घुली हुई थी वरन

तुम तो यह सोचा करो कि हम और तुम मिलकर इस प्यारे देश को अंग्रेजों की दुष्ट गुलामी से किस तरह स्वतन्त्र करा सकते हैं। बस,— हमारी इसी सोच में अपने देश के करोड़ों गुलाम मानवों का भला समझो।"

"हां समझ गया।"

"क्या समझ गये तुम।"

"यही कि तुम त्याग और बलिदान की एक जीती-जागती मूर्ति हो तुम एक ऐसे ऊंचे आदर्श वाली स्त्री हो जो इस पृथ्वी पर बहुत कम जन्म लिया करती हैं।"

वह मुस्करा दी।

"छि: सोची भी तो वही मुर्गे की एक टांग वाली बात।"

दुर्गेश जो कि बहुत देर से भूत की बातों में खोया हुआ था एकदम चौंक पड़ा। उसने मुस्कराकर अपनी नवजात पुत्री की ओर देखा, उसने बड़ी बेचैनी से नर्स से पूछा, "प्लीज सिस्टर, मैं अपनी पत्नी को देख सकता हूं?" आप मुझे उसके पास ले जा सकती हैं? सिस्टर प्लीज।"

और उसने अपनी नवजात पुत्री को जो कपड़े में एक गुड़िया की तरह लिपटी हुई थी इस भांति अपनी गोद में ले लिया और कलेजे से लगाये-लगाये शकुंतला के कमरे में पहुंचा। वह जाते ही खुशी के साथ बोला—

"बधाई हो शकुंत, तुम्हें यह चांद-सी पुत्री मुबारिक हो। वह आशा भरे शब्दों में बोला।

"और मेरी यह जिंदगी भी तुम्हें मुबारिक हो शकुंत इसलिए कि यदि ईश्वर न करे तुम्हें कुछ हो जाता तो मैं भी जीवित न होता इस

समय तक ।"

शकुंतला ने प्यार भरी नजरों से इसे देखते हुये कहा इसकी ग्रावाज में प्रसूत के कारण कमजोरी थी ।

"ईश्वर न करे कि ग्रापको कुछ हो ।" वह गम्भीर होकर बोली, "यह कभी न भूलना मेरे दुर्गेश कि तुम ग्रकेले नहीं हो, तुम्हारा बेटा ग्रब ग्राठ वर्ष का हो गया है ग्रौर फिर यह तुम्हारी दूसरी भेंट, ये नई कोंपल इन दोनों मासूम फूलों का पालन-पोषण तुम पर ही है ।"

ग्रौर फिर शकुंतला ग्रपनी बीमार-सी मुस्कराहट दुर्गेश के चेहरे पर बिखेरते हुये बड़े प्यार से बोली, "इस बार तुम्हारी जीत हुई तुम्हारी सबसे बड़ी खुशी तुम्हारी गोद में है, दुर्गेश तुम्हारी यह जीत तुम्हें मुबारिक हो ।"

दुर्गेश ने पुत्री को शकुंतला के बराबर लिटा दिया वह खुशी से पागल होते हुये बोला, "तुम्हें मालूम है शकुंतला इस ग्रपनी बेटी का नाम मैने क्या रखा है ?"

'जोसना !"

ग्रौर दुर्गेश हैरान होते हुये शकुंतला को ग्रोर देखकर बोला "हैं ! तुम्हें यह कैसे मालूम हुग्रा कि मैंने इसका नाम 'जोसना' रखा है ?"

शकुंतला ने मुस्कराकर दुर्गेश को देखा, "इतनी जल्दी भूल गये, यह तुमने ही मुझसे एक बार कहा था कि ग्रबकी बार में तुम्हें तुम्हारे मन की खुशी दूं । तुम ग्रपनी इस सबसे बड़ी खुशी का नाम 'जोसना' रखोगे ।"

"ग्ररे हां ! दुर्गेश ने कहा, "यह तो मैं भूल ही गया कि मैं ग्रपने दिल की हर बात बता दिया करता हूं ।"

वह घुटनों के सहारे शकुंतला के पलंग से लगा बैठा था शकुंतला इसी तरह लेटे-लेटे उसके सिर के खुश्क ग्रौर बेढ़ंगे बालों में ग्रपनी

उंगलियों से कंघी करते हुये बड़े प्यार और बड़ी गर्व से बोली, "इन्हें किसी बात का होश ही कहां था ?"

दुर्गेश नर्स को कमरे में आता हुआ देखकर उठकर खड़ा हो गया था। नर्स ने शकुंतला की पट्टी के पास एक कुर्सी खिसका दी और बोली, "आप कुर्सी पर बैठ जाइये।"

दुर्गेश धन्यवाद करते हुये कुर्सी पर बैठ गया। नर्स ने शकुंतला से कहा, "मिस्टर दुर्गेश की हालत तो आपकी इस तकलीफ से इतनी अधिक खराब थी कि डाक्टर साहब परेशान हो गए थे। हम सबकी परेशानी के मारे बुरा हाल था और आपका केस वास्तव में ही गम्भीर था और तो और वह लेडी डाक्टर साहिबा जिन्होंने कि आपका आपरेशन किया था मिस्टर दुर्गेश की शक्ल देखकर घबरा गई थी वह बार कह रही थी कि ईश्वर न करे यदि आपका कुछ हो जाये। तो इनको यह बुरी खबर कौन सुनायेगा !" नर्स कहते कहते रुक गई।

और सत्य तो यह है शकुंतला जी कि आपकी हालत उस दशा पर पहुँच गई थी कि जिस दशा पर पहुंचकर औरतें बिल्कुल नहीं बचा करती और मिस्टर दुर्गेश की हालत ऐसी थी कि उफ! भगवान बचायें, परेशानी में सिगरेट पीने वाले सिगरेट पर सिगरेट पीते है और इन्हें सिगरेट पीने का होश तक नहीं था। इनके चेहरे के तोते उड़ रहे थे और शोक का अथाह सागर इनके चेहरे पर बल खा रहा था ये पागल हुये जा रहे थे, और हम सबके हाथपांव फल रहे थे।

यह सुनकर शकुंतला की आंखों में आंसू आ गये और वह अपने होंठ चबाती हुई बड़े प्यार से दुर्गेश की ओर देखकर भर्राई हुई आवाज में बोली, "क्यों जी तुमने अपनी यह हालत क्यों बना रखी थी ?"

और उत्तर में दुर्गेश की आंखे भीग गईं। घुटी और भर्राई

आवाज में बोला, "तुम ही तो मेरा सब कुछ हो शकुन्तला, तुम तो मेरी जिंदगी हो और तुम ही तो मेरी सुधबुध हो।"

"बुरी बात।" शकुंतला भरी हुई आवाज में कठिनाई से बोली, "तुमने ही तो कहा था न।"

"गमे जाना से भी गराह है गुलामी यह देश की!"

फिर तुम मेरे लिये इतने अधिक बेचैन क्यों थे ?

उसने आशाओं में डूबकर कहा अभी तो तुम्हें अपने देश के लिये जीना है। दुर्गेश बहुत दिन जीना है। तुम्हें और अपने देश की स्वतन्त्रता के लिये इस पशुता के लिये अंग्रजों से लड़ाई लड़नी है। अपने देश को तुम्हें अंग्रजों की दुष्ट गुलामी से छुटकारा दिलाना है। देश से इस साम्प्रदायिकता की बीमारी को दूर करना है जो इन्हें अंग्रेजों की "लड़ाओ और शासन करो" की नीति का फल है। तुम्हें तो अभी देश विरोधियों और इन निर्दयी दुष्टों से निपटना है जो देश की गुलामी की जंजीरों को केवल अपने व्यक्तिगत हित के लिये और मजबूत करने के लिये तत्पर हैं और फिर अभी तक तो तुम्हें दो भोले भाले बच्चों के लिये जीवित रहना है जिनका इस विशाल संसार में तुम्हारे सिवा कोई नहीं है।

शिकायत भरी नजरों से प्यार में डूबकर उसने दुर्गेश को देखा वह प्यार की जबान बनकर बोली, "फिर तुम केवल मेरे जीवन के लिये अपना अमूल्य जीवन दाव पर क्यों लगाये हुये थे ?"

उसने दुर्गेश से कहा, "मैं ही तुम्हारे लिये सब कुछ इसलिये नहीं हूं दुर्गेश कि तुम आम मनुष्यों से ऊंचे हो और तुम्हारे ऊपर आम मनुष्यों से कहीं अधिक बड़ी
और पवित्र जिम्मेदारियां हैं, अपने देश की सच्ची और सही ढंग की आज़ादी की, जिसके लिये प्यारे देशवासी, सब कुछ बलिदान कर देते

हैं। तुम्हें तो मुस्लिमलीग और कांग्रेस दोनों के मध्य ऐसी राह निकालनी हैं और ऐसे हालात बनाने हैं इन दो बड़ी पार्टियों के मध्य कि अंग्रेज, हिन्दू और मुसलमान के प्रश्न की आड़ लेकर अब और दिनों तक इस देश में अपनी दाल न गला सके। इन दो भाइयों को लड़ाकर वह इस देश में और भी अधिक समय तक शासन न करने पाये। पाकिस्तान को मान लेना बुद्धिमत्ता और ठुकराकर अंग्रेजों की पराधीनता स्वीकार किये रहना रुस्त नादानी है। इसलिए तुम हर हर भावना को बलिदान कर दो मेरे मित्र अपने देश की स्वतन्त्रता के लिए···और तुम्हारी यही भावना आदरणीय है और वह एक ऊंचे आदर्श वाली भावना होगी।"

वह जज्बात में डूब गई।

"यदि मैं ना भी रहूँ इस संसार में तो क्या होता है? मर जाने के बाद भी मेरी आत्मा अपने देश की स्वतन्त्रता के लिए व्याकुल और बेचैन रहेगी। मेरे प्यारे कवि और लेखक, इसलिए तुम अपने देश की चिन्ता के अतिरिक्त संसार की चिन्ता त्याग दो और यह प्रयत्न करो कि हमारे बच्चे इस परतन्त्र देश में सांस लेने से जितना शीघ्र छुटकारा प्राप्त करें। वह अच्छा है, उन्हें स्वतन्त्र देश में सांस लेना है और स्वतन्त्र देश का नागरिक कहलाना है, उन्हें परतन्त्र देश का नहीं और तुम्हें इस भांति मेरे न होने के ख्याल से कभी निराश नहीं होना है मेरे मित्र।"

उसने दुर्गेश से वचन लिया कि "वचन दो कि तुम जीवन में फिर कभी निराश न होगे, चाहे मैं इस संसार में रहूँ या न रहूं।"

श्रौर दुर्गेश जोकि इतनी देर से ये सारी बातें न जाने किस संसार में खोया हुआ सुन रहा था। एकदम तड़पकर बोला, "ये तुम सब ठीक कहती हो। तुमने सारी बातें ठीक कही हैं शकुन्त, लेकिन ईश्वर के लिए यह न कहो कि तुम इस संसार में न होगी तो क्या होगा? ईश्वर न करे कि तुम इस ससार में न होगी तो मेरे हृदय की दुनिया में हलचल मच जायेगी शकुन्त, मेरे मस्तिष्क के पर्दे फट जायेंगे श्रौर मेरी पूरी हस्ती भूकम्पों के सुपर्द हो जायेगी!

उसने तड़पकर कहा, "तुम न होगी तो हम यह समझेंगे कि इस संसार में कुछ नहीं रहा श्रौर फिर उसने प्यार से इस विषय को बदलने की कोशिश की।"

"अच्छा खैर छोड़ो, इन बातों को श्रौर यह बताश्रो कि तुम श्रब कैसी हो?"

"बिल्कुल ठीक, स्वस्य" शकुन्तला मुस्कराई।

"मुझे क्या हुश्रा है?" उसने श्रपनी नवजात पुत्री की श्रोर देखते हुये कहा, "श्रब तो मुझे श्रापकी इस 'जोसना' के लिए बिल्कुल स्वस्थ श्रौर ठीक रहना होगा।"

श्रौर फिर उसने श्रपनी पुत्री को उटाकर हृदय से लगा लिया।

शकुन्तला नर्सिंग होम से घर तो आ गई थी लेकिन वह पहले से भी अधिक कमजोर दिखाई देती थी और दुर्गेश सोचता रहता था कि शकुन्तला की यह कमजोरी दूर हो सकती है कि वह इसके लिए अच्छा इलाज का खर्च उठा सके महंगी से महंगी दवायें और टानिक वह इसके लिए ला सके। और वह जो बचपन से खुली हवा और महलों में रहने को अभ्यस्त है शानदार फ्लैट या बड़े से बड़े बंगले में रखी जा सके तो, वह जानता था कि बागों में खिलने वाले खुश रंग नाजुक फूल रेगिस्तान में नहीं मुस्कराते और नाजुक मिजाज को सेहराओं में ताजा नहीं रखा जा सकता।

लेकिन वह इस देश का लेखक था जिस देश के लेखक और कवि भूखों मरते हैं। आर्थिक दृष्टि से वह दूसरे प्रगतिशील देश के लेखकों की अपेक्षा शून्य के बराबर भी नहीं होते। वहा के लेखकों और कवियों के पास लम्बी-लम्बी कारें होती हैं जब कि यहां के कवियों तथा लेखकों के पास ट्राम या बस का किराया भी कभी-कभी नहीं होता। वह सजे हुये शानदार बंगलों, कोठियों में रहते हैं और ये खोलियों में, वहां के लेखक पौष्टिक और शक्तिदायक भोजन खाते हैं और यहां के लेखक रोटी के सूखे टुकड़ों को तरसते हैं वह ह्विस्की पीते हैं और ये अपने दिल का खून। वहां के कलाकार स्वस्थ गायों का दूध पीते हैं और यहां के कलाकार केवल चाय के लिए पाव या आधा सेर रोज के बिल

के लिए सुबह और शाम इसलिए गालियां खाते हैं कि वह महीने का बिल समय पर नहीं चुका सकते। कलाकार वह होते हैं जो अपनी कला के ज्ञान के लिए दूसरे देशों का दौरा पिकनिक के तौर पर करते हैं। और यहां का कलाकार रोटियों के चक्कर में प्रकाशक के दर की जूतियां चटकाता है और फिर भूखे पेट किसी कोने में बैठकर कला की रचना करने लगता है और अपने इस पेशे को कोसता है।"

वहां के लेखकों का साहित्य उनके लिए हजारों और लाखों का मूल्य लेकर आता है और यहां के लेखकों का साहित्य कौड़ियों के मोल बाजारों में बिक जाता है। वहां के लेखकों के उपन्यासों और कहानियों पर फिल्में बनाई जाती हैं और साहित्य और फिल्म का चोली दामन का साथ समझा जाता है और यहां के फिल्म वाले साहित्य और फिल्म के साथ को आग और पैट्रोल का साथ समझते हैं, फिर भी अपने देश के इन्हीं लेखकों की रचनाओं को प्रायः तोड़-मरोड़ कर फिल्म में प्रस्तुत कर देते हैं और लेखक को नया पैसा भी नहीं देते। वहां अपने लेखकों के अधिकारों का विशेष ध्यान रखा जाता है और यहां इन अधिकारों की सुरक्षा भी नहीं होती। फिल्म प्रस्तुत करने वाले और फिल्म लेखक बड़ी शान के साथ अपने लेखकों की रचनायें चुराते रहते हैं और इन्हें जरा भी शर्म नहीं आती। वहां एक एक विचार और एक-एक सीक्वेंस के हजारों रुपये लिये जाते हैं और यहां पूरा ऐक्ट हज्म करके भी डकार नहीं ली जाती। बड़ी शान के साथ विचार और भाव चुरा लिये जाते हैं और बिचारा लेखक सिनेमाहाल में बैठकर अपनी आंखें मलकर यही देखता है कि कहीं वह अपने विचारों की चोरी का स्वप्न नहीं वास्तविकता होती है। लेकिन यह वास्तविकता होते हुए भी इस गरीब लेखक के लिए वह हकीकत इसलिए होती है कि देश का 'कापीराइट'

का नियम त्रुटिपूर्ण होता है और वह इस वास्तविकता को वास्तविकता मानने से लाचार नजर आता है और फिल्म वाले बड़े गौरव से नियम की इस लाचारी पर तथा अवास्तविकता पर मुस्कराते हैं। और खिल्ली उड़ाते हैं। वह खिल्ली उड़ाता है और गरीब लेखक यह लाचार साहित्यकार आंसू बहाता है और सोचता है कि मेरे पास तो वकील से नोटिस पहुँचवाने के लिए भी पैसे नहीं हैं फिर मै मुकदमा किस तरह लड़ूंगा और फिर फिल्म वाला जोकि पैसेवाला है इसलिए वह मुझे परेशान करने के लिए जगह जगह से मुझ पर मुकदमे चलवा देगा और मैं शरण मांगकर क्षमा प्रार्थी हूँगा। यह समय ही ऐसा है कि सच्चे के सामने झूठा हंसता है और चोर के सामने साहूकार हाथ जोड़ता है।

दुर्गेश के साथ भी ऐसा ही होता रहता था। उसके विचार और उसके उपन्यासों के प्लाट्स तथा आत्मा प्रायः चुरा ली जाती थी और वह अपने माल की चोरी पर खून के घूंट पीकर रह जाता था और जिस तरह कि वह अपने उपन्यासों की भूमिका और भावों की चोरी पर हमेशा खून के घूंट पीकर रह जाता था इसी तरह वह इस समय भी इस दुःख पर खून के घूंट पीकर रह गया कि वह गरीब है और अपनी शकुन्त के लिए कुछ नहीं करता।

वह बहुत उदास और चिंतित बैठा था और इसके आठ वर्षीय पुत्र अजीत ने आकर इससे कहा—"डैडी।"

और वह जो चिंतित-बैठा बहुत कुछ सोच रहा था एकदम चौंक पड़ा। "जी बेटे।

उसके बेटे अजीत ने प्यार से उसकी गर्दन में अपनी बांहें डाल दीं, "एक बात कहूँ डैडी

"जरूर कहो बेटे।"

"आपने कहा था न कि आप दस तारीख को स्कूल की फीस दे देंगे हमने 'फादर' से कह दिया कि दस तारीख को हम फीस लाकर दे देंगे।"

"अरे हां!" दुर्गेश चौंक पड़ा। अजीत दुःख के साथ बोला, "और आज दस तारीख है डैडी, 'फादर' ने हमें कक्षा से उठाकर घर भेज दिया कि तुम फीस लेकर आना।"

और वह सोच में पड़कर बोला, "कितनी फीस है तुम्हारी?"

"अठारह रुपये हैं, डैडी।" हम कान्वेन्ट में पढते हैं न इसलिए।"

अजीत ने बड़े भोलेपन से कहा, 'और स्कूलों में इससे कम फीस है।"

और दुर्गेश के दिल से आवाज आई।

"हां! ठीक कहते हो बेटा, शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार भी धनिकों के हाथों में चला गया है।"

वह फिर दुःख से बोला, "अच्छा कल तुम फीस लेकर ही स्कूल जाना बेटे।"

और फिर वह उसी समय घर से निकलकर एक प्रकाशक के पास पहुँचा।

"आइए, आइए, दुर्गेश जी!" अब पब्लिसज ने अपनी कुर्सी पर से उठते हुए सत्कार के साथ दुर्गेशचन्द्र का स्वागत किया। "पधारिए।"

दुर्गेश कुर्सी पर बैठ गया।

"कहिए क्या सेवा करूं?"

"मुझे दो सौ रुपये दे दीजिए।"

"जो आज्ञा दुर्गेश जी, "पब्लिसर्ज बोला, "लेकिन यह और बता दीजिए दुर्गेश जी कि किस हिसाब···"

और दुर्गेश तुरन्त बोल उठा, 'हिसाब यह भाई कि मै अपना वह उपन्यास आपको दे रहा हूँ।"

"लेकिन 'रायल्टी' पर तो ।"

दुर्गेश ने पब्लिशर्ज की फिर बात काटी, "मे वह उपन्यास आपको आपकी ही इच्छा पर कापीराइट पर दे रहा हूँ।'

और यह सुनते ही पब्लिशर्ज बहुत खुश हुआ और बोला, "वह उपन्यास बेकार इतने दिनों तक अपने घर में डाले रहे अब तक तो यह छप भी जाता।"

"तो अब छप जाएगा।"

"हां-हां" पब्लिशर्ज इस प्रकार मुस्करा रहा था कि कोई शिकारी अपने शिकार को जाल में फंसा देखकर मुस्कराता है, "वह तो छप ही जाएगा।"

और फिर उसने, गोया कि दुर्गेशचन्द्र पर अहसान जताते हुए कहा, "तो दो सौ काहे को आप पूरे छः सौ रुपये ले जाइये।"

दुर्गेशचन्द्र जब घर पहुंचा तो शकुन्तला ने बड़े प्यार से पूछा, "कहां चले गये थे।"

"जरा पब्लिशर्ज के पास तक गया था।"

"पब्लिशर्ज के पास।"

"हां!"

और यह कहकर उसने सौ-सौ के छ: नोट शकुन्तला के हाथ पर रख दिए!

"अरे!" वह दुःख से बोली, "तो क्या तुमने अपना उपन्यास पब्लिशर्ज को 'कापीराइट' पर दे दिया?"

"क्या करता" दुर्गेश ने असमर्थता के साथ कहा और फिर वह बड़बड़ा कर रह गया। "देना पड़ा।"

शकुन्तला बहुत अधिक दुःख के साथ बड़बड़ाई—

"सोचते थे कि हमारा देश शीघ्र स्वतन्त्र हो जाएगा और देश की सारी गन्दगी साफ हो जाएगी पेट भर रोटी, सिर छुपाने का स्थान, और तन के कपड़े पर यहां के गरीबों का भी अधिकार मान लिया जाएगा। बेरोजगारी और अन्त दूर हो जाएंगे शिक्षा मुफ्त और आम

होगी श्रीर हमारा देश संसार के दूसरे उन्नतिशील देशों के साथ गौरव के साथ धीरे-धीरे छाती तान कर खड़ा हो सकेगा, लेकिन ऐसा लगता है कि हमारे स्वप्न ही रहेंगे श्रौर हमारा देश अंग्रेजों की गुलामी से कम-से-कम मेरे जीवन में तो स्वतन्त्र न हो सकेगा श्रौर मैं उसकी स्वतन्त्रता की आशा ही लेकर चिता पर जाऊंगी।

"ईश्वर न करे" दुर्गेश ने शकुन्तला के मुंह पर हाथ रखा, "तुम अभी से निराश हो बैठीं?"

श्रौर फिर वह एक ठण्डी आह भर कर बोला—

"हर दम की प्रार्थना यही है कि हमारा देश शीघ्र से शीघ्र स्वतंत्र हो, पर देखो।"

श्रौर फिर उसने शकुंतला से कहा। वह बात का विषय बदल देना चाहता था।

'सोचता हूं अपने इस उपन्यास के उर्दू के अधिकार भी कल जाकर मौलवी असरार अहमद को दे आऊं, रुपये ६०० वह भी देने को कह रहे थे।

शकुंतला ने बड़ी हसरत से कहा श्रौर उसकी आंखे भीग गईं। 'यह क्या' दुर्गेश, शकुंतला की आंखों में आंसू देखकर तड़प गया। 'यह सब नहीं होगा भई।"

शकुंतला को इस कदर उदास देखकर उसने अपने दिल के दर्द को ज़बरदस्ती थपक कर सुला दिया। श्रौर मुस्कराया।

"अगर तुम्हारी आंखों में, मेरा तात्पर्य है कि अगर इस नरगिसी प्यालों में मैंने फिर यह मनहूस आंसू देखे तो मैं इन्हीं नरगिसी प्यालों की शपथ खा कर कहता हूं कि मै अपने दिल का खून कर लूंगा। कहे

देता हूँ। हां।"

उसने शकुंतला की ठोडी प्यार से ऊपर उठाई, उसकी आंखों में झांककर बोला, "मुस्कराओ शकुंतला, तुझे मेरी शपथ। मैं इन मुस्कराती हुई आंखों में अपनी खुशियां खोज लूंगा।"

शकुंतला मुस्करा दी और वह उस पर हजार से कुर्बान होते हुये झूमकर बोला, "विश्वास करो शकुंत कि मैंने सब कुछ पा लिया है। मैं कल ही तुम्हें एक अच्छी-सी नौकरी लेकर दिखाता हूँ।"

"नौकरी।"

"हां भई।"

"कैसी नौकरी ?"

"घास छीलने की नहीं भाई।" वह मुस्कराया, "इसलिये कि घास छीलना भी एक कला है और मुझे यह कला नहीं आती।"

"फिर आप कौन-सी कला को जानते हैं श्रीमान" शकुंतला मुस्कराई "तनिक मैं भी तो सुनूं कि आप किस कला के गुरु हैं।"

"कलम घसीटने का गुरु हूँ शकुन्त" वह मुस्करा रहा था, "और अगर मेरी इस बात का विश्वास तुम्हें न हो तो अपने दिल से पूछ लो।" वह शकुंतला के घने काले चमकीले, लम्बे बालों से खेलते हुये बोला, मैं अब पत्र का सम्पादक बनूंगा।"

"पत्र का सम्पादक।"

"क्यों! क्या पत्र का सम्पादक बनना बुरी बात है।"

"बुरी बात तो नहीं, लेकिन यह नौकरी है कहां ?"

"समाचार-पत्र के दफ्तर में।"

"और मैं पूछूंगी कि यह समाचार-पत्र का दफ्तर कहां है ?"

शकुंतला मुस्कराई "तो श्रीमान शीघ्र ही यह कह देंगे कि एक बिल्डिंग में।"

"और जब तुम यह पूछोगी कि यह बिल्डिंग कहां है ?"

और शकुंतला बात काटकर बोली, "जी हां, तो आप कह देंगे कि बिल्डिंग एक सड़क के किनारे है या यह कह देंगे कि वह बिल्डिंग जमीन पर है।"

"हां, यह बात तो है।"

दुर्गेश ने शकुंतला को अपनी मुस्कराती आंखों से देखा, "तुम मेरी दिल की बातें समझती तो खूब हो।"

"यह इसलिये कि मैं आपके दिल में छुपी जो रहती हूं।" शकुन्तला बोली, "श्रीमान के दिल का कोना कोना मेरा देखा हुआ हैं भला वह कौन है जो आपके घर के कोने कोने को न जानता हो।"

"अच्छा तो लम्बी बातें समाप्त और तुम यह सुन लो कि मैं हिन्दी के दैनिक पत्र नवयुग का सम्पादक बनने जा रहा हूं।"

"अरे!"

"हां।" वह बोला,, "इसके मालिक की ओर से अच्छी ओफर आई है।"

"कब।"

"यह ओफर तो पुराना है लेकिन मै यह इसलिये नहीं करना चाहता था कि किसी की लिखी हुई पौलिसी मुझसे निभती जो नहीं है, लेकिन अब करूंगा यह नौकरी।"

'तो क्या आप अपनी आत्मा बेचने जा रहे हैं श्रीमान।'

"न, न, न!"

दुर्गेश ने तोबा करते हुये कानों को हाथ लगाया, "अगर ऐसा समय मुझपर आया तो मै आत्महत्या को अच्छा समभूंगा।"

"फिर।"

"समाचार के मालिक इस बात पर राजी हो गये हैं कि वह मेरी पोलिसी में अड़चन न डालेंगे।"

"तो फिर ठीक है।" शकुन्तला खुश होकर बोली, "क्या वेतन देंगे?"

"सौ रुपये।"

और फिर दुर्गेशचन्द्र ने एकदम व्याकुल होकर पूछा। वह अपनी सारी बातें भूल गया।

"यह हमारी बेटी जोसना क्यों रो रही है?"

और वह शकुन्तला के उत्तर की प्रतीक्षा किये बगैर कमरे की ओर लपका शकुन्तला पीछे पीछे थी. बोली, 'अब. ऐसी भी क्या व्याकुलता, बच्चे तो रोया ही करते हैं। आप तो अपनी लाडली की एक तनिक-सी चूं-चां पर भी अधीर हो जाते हो," वह मुस्कराई, "देख लजिये कि आपकी लाडली क्यों रो रही है?"

जोसना जिसकी आयु अभी केवल सात मास थी इसलिये चीख-चीखकर रो रही थी कि उसको आया उसके शरीर पर तेल की मालिश कर रही थी।

शकुन्तला मुस्कराई, "देख लिया आपने कि यह आपकी लाडली अभी से इतनी शरीर है। अभी से यह जैसे कि आपकी नाक पर मक्खी न बैठने देती है।'

दुर्गेश ने कहा, "कुछ भी हो शकुन्त लेकिन मैं न जाने क्यों इसके एक जरा से रोने पर भी व्याकुल हो जाता हूं।"

"इतना प्यार भी बुरा होता है।

"बुरा क्या होता है और भला क्या होता है? प्यार कम्बख्त यह देखता ही नहीं है।" वह जैसे कि स्वयं से कह रहा हो, "न जाने क्यों मुझे इससे इतना प्यार।"

और यह कह कर उसने तेल में भरी हुई इस नंग धडंग बच्ची को अपने कपड़ों का विचार किये बिना अपनी गोद में उठा लिया, और शकुन्तला, "अरे! अरे! यह तेल में डूबी हुई है। आपके कपड़े..." कहती की कहती रह गई।

शकुन्तला को अक्सर दिल के दौरे पड़ते थे और दुर्गेश इससे बहुत अधिक हैरान और उदास रहता था। उसने शकुन्तला के इलाज में कोई कसर उठा नहीं रक्खी। उसने अपनी पत्नी ही नहीं वरन् अपनी जान से अधिक प्रेमिका, शकुन्तला के इलाज में रुपया पानी की तरह बहाना शुरू कर दिया। वह अब रात दिन इसी चिन्ता में डूबा रहता था कि उसकी शकुन्त किसी तरह स्वस्थ हो जाये।

दिल्ली के हर बड़े-से बड़े डाक्टरों से सलाह ली। शकुन्तला को दिखाया और महगी से मंहगी दवायें उसके लिए लाया लेकिन किसी एक इलाज से भी शकुन्तला को लाभ न हुआ और शकुन्तला की बीमारी बढ़ती ही गई।

शकुन्तला की बीमारी बढ़ी और दुर्गेश की चिन्तायें बढ़ती गयीं और इसका दु:ख उसकी बीमारी के साथ ही साथ इतना बढ़ा कि वह हर समय खिन्न रहने लगा। अब उसका मन किसी काम में नहीं लगता था।

उसने डाक्टरों को छोड़कर अब हकीमों का इलाज शुरू किया और दिल्ली के सबसे बडे हकीम के इलाज से शकुन्तला को बहुत थोड़ा लाभ हुआ। तो दुर्गेश को ऐसा लगा कि उसे कुबेर का धन मिल गया हो। उसने शकुन्तला से कहा—

"अब तुम बिल्कुल ठीक हो जाओगी शकुन्त," उसने शकुन्तला को धैर्य बंधाया। "यदि तुम्हारे दिल का यह दौरा बिल्कुल खत्म न हो जाय तो फिर कहना।"

ईश्वर करे, "तुम्हारी बात सही निकले।" शकुन्तला दुःख भरे स्वर में बोली, "अब तो मै जीवित रहना चाहती हूँ सबसे पहले तो तुम्हारे लिए और फिर बच्चों के लिये, अपना अजीत भी अभी बहुत छोटा है और नन्ही 'जोसना' तो अभी दूध ही पीती है।"

उसकी आंखों में आंसू उमड़ आये।

"सोचा करती हू, ईश्वर न करे यदि मैं मर गई तो जोसना का क्या होगा ?" और यह कहकर अपने आप पर बहुत काबू पाने की कोशिश के अलावा भी फूट फूट कर रोने लगी। और इसके इस तरह रोने से दुर्गेश की हालत ऐसी कि उसे ऐसा महसूस हुआ कि वह अभी बेहोश हो जायेगा लेकिन वह अपनी पूर्ण शक्ति से काम लेकर शकुन्तला को पुकारने और समझाने लगा।

"मेरी शकुन्त तुम्हें भी मेरी कसम, तुम्हें अपने बच्चों का वास्ता इस तरह न रोओ, रोयें तुम्हारे शत्रु तुम्हें कभी कुछ नहीं होगा। तुम बिल्कुल ठीक हो जाओगी और ठीक न हो जाओ तो मेरा जिम्मा। हकीम साहब कह रहे थे कि तुम्हारे दिल का दौरा केवल कमजोरी के कारण है कोई गम्भीर बात थोड़ी है।"

वह शकुन्तला को घबराये हुए समझा रहा था कि इतने में अजीत स्कूल से आ गया और आते ही जो उसने अपनी मां की यह हालत देखी तो वह अपना बस्ता एक तरफ फेंककर बेचैन होकर अपनी मां से लिपट गया और जोर से रोने लगा। 'मम्मी' मेरी 'मम्मी' क्या हुआ तुम्हें मम्मी ?"

उसने बड़ी बेरहमी की नजरों से अपने पिता को देखा, "ये हमारी मम्मी को क्या हो गया डैडी ?'

शकुन्तला ने जो कि अपने होश में न थी, बेकाबू होकर अजीत को अपने कलेजे से लगा लिया वह उसे पुकारती हुई बोली, "मुझे कुछ नहीं हुआ बेटा चुप रहो, चुप रहो, मत रोओ, देखो मैं अच्छी भली हूँ, मैं बिल्कुल ठीक हूँ।"

वह अजीत को अपने कलेजे से लगा रही थी कि वह भर्राए गले से बोला, "फिर तुम क्यों रो रही थीं मम्मी ?"

और शकुन्तला इसके तरह पूछने पर निरुत्तर हो गई।उसने उसे और जोर से दबा लिया, बोली, 'बस यो ही न जाने क्यों रोना आ गया बेटा।'

उसने अजीत का माथा चूम लिया, "शायद मैं पगली हूं।"

और फिर उसी रात शकुन्तला को दिल का भयानक दौरा पड़ा, उस समय रात के दो बजे थे और दुर्गेश अपने समाचार-पत्र के दफ्तर से अभी अभी लौटा था वह पागलों की भांति डाक्टरों के पास भागा और डाक्टर को जो कि इसका मित्र भी था अपने साथ ले आया। डाक्टर ने शकुन्तला को खूब अच्छी तरह से देखा और इंजेक्शन दिया और नींद की दवा दी। उसने दुर्गेश से कहा—

"स्थिति गम्भीर है दुर्गेश, तुम प्रातकाल भाभी को मेरे पास ले आना मैं इसके दिल का 'एक्स-रे' लेकर और दूसरे शहर के दिल विशेषज्ञ से सलाह करूंगा, हकीम साहब को हम बुला लेंगे।"

और फिर दूसरी सुबह डा० दुर्गेश से कह रहा था, "दिल छोटा न करो मित्र, भाभी की स्थिति बहुत गम्भीर हो गई है। दिल के विशेषज्ञ डाक्टरों की राय है कि इसका इलाज यहां न हो सकेगा। भाभी का जीवन बच सकता है यदि तुम इन्हें जर्मनी के प्रसिद्ध दिल के

विशेषज्ञ डा० गोपालन को दिखाकर वहां उसका इलाज करा सको। उस डाक्टर ने अपनी देख रेख में अपने नर्सिंग होम में इस प्रकार के कई रोगियों को रखकर जानें बचाई है। तुम्हें भाभी को लेकर हैदराबाद जाना पड़ेगा।"

डाक्टर ने कहा "वह हकीम वैद्य साहब के इलाज ने यूं समझो कि अब तक भाभी को सम्भाले रखा है वरना —।"

और दुर्गेश जो कि अचम्भित था अब तक यह सब सुन रहा था एकदम चीख पड़ा...।"

"डाक्टर, ईश्वर के लिये अब कुछ न कहो डाक्टर, नहीं तो मेरा हार्ट फेल हो जायेगा।"

वह अपना सर पकड़ कर बैठ गया, वह रो रहा था, उसने अपना सर उठाकर भर्राई हुई आवाज में डाक्टर से पूछा. "वहां लेजाकर इलाज करवाने में कितना खर्च होगा डाक्टर।"

'कम से कम पचीस हजार रुपये।"

दुर्गेश ने अपने बाप को एक 'तार' दिया और 'तार' देकर वह सीधा शकुन्तला के बाप की कोठी पर पहुँचा।

"मुझे सेठ गंगाधर से मिलना है," उसने द्वारपाल से विनम्र स्वर में कहा। "मुझे अन्दर जाने दो भैया।"

"क्या काम है सेठ से ?"

"काम है।" वह व्याकुलता से बोला, "बड़ा आवश्यक काम है।"

"आप कौन हैं साहब ?"

"मैं तुम्हारे सेठ का दामाद हूं, मेरा नाम दुर्गेशचन्द है।"

और यह सुनते ही द्वारपाल ने कानों के हाथ लगाया और विनम्र स्वर में बोला, "क्षमा कीजिये साहब," द्वारपाल ने दुख और शोक

से कहा। सेठ ने आज्ञा दी है कि—

द्वारपाल कहते कहते रुका और घबराकर बोला, "क्या आदेश दे रहा है भाई?"

"आदेश है साहब कि आपको और उनकी बेटी शकुंतला बीबी को किसी मूल्य पर अन्दर न आने दिया जाये।"

और यह सुनकर दुर्गेश के पैरों की मिट्टी निकल गई। वह द्वारपाल की मिन्नत करने लगा। वह द्वारपाल के हाथ जोड़ रहा था वह उसके पैरों को हाथ लगा रहा था, वह उसके समक्ष रो पड़ा। उसने सेठ गंगाधर से मिलने का कारण साफ साफ बता दिया और उसकी इस लालची और इस बेचैनी को देखकर द्वारपाल का दिल द्रवित हो गया। उसकी आंखों में आंसू आ गये।

"आप अन्दर जाइये साहब, जो कुछ होगा मै भुगत लूंगा। बहुत होगा सेठ नौकरी से निकाल देंगे और क्या?"

और वह द्वारपाल का धन्यवाद करता हुआ अन्दर गया। अंदर के बाहर वाले बड़े ड्राइंग रूम में सेठ गंगाधर बैठे थे।

"नमस्ते जी।", दुर्गेश ने भिक्षुकों की भांति नमस्ते की।

"कौन हो तुम", सेठ गंगाधर ने गर्व से इतराकर दुर्गेश की ओर देखते हुये पूछा, और वह घबराकर नम्रता से बोला।

"जी" मेरा नाम दुर्गेशचन्द्र है, मैं आपकी पुत्री का…।"

और गंगाधर लाल पीला होकर खड़ा हो गया, वह इस तरह बेचैन होकर उठा था जैसे कि उसे बिच्छु ने डंक मार दिया हो और या बहुत विषैले नाग ने डस लिया हो। वह गला फाड़कर चिल्लाया।

"दूर हो जाओ मेरी नजरों से, नहीं तो मैं गोली मार दूंगा कमीना कहीं का, बदमाश, आवारा, हरामजादा।"

दुर्गेश जो अपनी इज्जत रखने तथा चाहने वाला था कि इतनी बहुत सी गालियों के बाद भी नम्रता से बोला, "आप मुझे गोली मार दीजिए, हरामजादा हो जो आपकी गोली के सामने से बचने की तनिक भी चेष्टा करे। लेकिन ईश्वर के लिये अपनी पुत्री को बचा लीजिये बीमार है उसे दिल की तकलीफ है और इसका इलाज केवल जर्मनी में हो सकता है इसके इलाज के लिये पच्चीस हजार की आवश्यकता है।" वह रो पड़ा, "आप पच्चीस हजार देकर मुझे गोली मार दीजियेगा।"

गंगाधर ने घृणा से उसकी तरफ देखा, वह बड़ी बेरहमी से बोला, शकुन्तला अगर मर जाएगी तो यह उसके पाप का प्रायश्चित होगा और उसे मर जाना चाहिए, काश कि वह इससे बहुत पहले मर जाती।"

"लेकिन उसके दो छोटे-छोटे बच्चे हैं।" दुर्गेश के लगातार आंसू निकल रहे थे, "उसकी एक बच्ची अभी बहुत छोटी है साल भर की भी नहीं है और उसका पुत्र केवल साढ़े आठ वर्ष का है ईश्वर के लिए रहम खाइए।"

वह हाथ जोड़ने लगा वह प्रार्थना कर रहाथा, "कुछ भी हो शकुन्तला भी आपका खून है।"

"वह मेरा अपवित्र खून है" गंगाधर घृणा और गुस्से से बोला, "और गन्दा खून जोंक लगवाकर निकलवा दिया जाता है। और तू ही वह जोंक है जिसने मेरे इस गन्दे खून को पी लिया" वह गला फाड़कर ऊंचे स्वर में चिल्लाया, "दूर हो जाओ, तुम कमीने यहां से वरना मैं तुम पर शिकारी कुत्ते छुड़वा दूंगा।"

उसने झुंझलाकर कहा, "शकुन्तला के लिए मेरे पास कुछ नहीं है मै उसे एक फूटी कौडी भी न दूंगा।"

और इससे पूर्व कि दुर्गेश और खुशामद करे और गिड़गिड़ाए उसने

दुर्गेश को थप्पड़, घूँसे और ठोकर मार मारकर अपने ड्राइंग रूम से बाहर निकाल दिया।

और दुर्गेश ने तड़पकर कहा, 'तुम आराम की मौत भी न मर सकोगे तुम्हारा दम भी बड़ी कठिनाई से निकलेगा और शायद कभी एक ऐसा शासन भी आए जो तुम्हें ब्लैक के धंधे की सजा में तरसा-तरसाकर मार डाले, केवल तुम्हारे जैसे लोगों के लिए।"

और फिर वह रुका और दुःख की बाढ़ अपने दिल में लिए हुए वहां से चला आया, उसने अपने अखबार के मालिक से बात की ? वह उसके सामने भी गिड़गिड़ाया लेकिन कुछ न हो सका। पच्चीस हजार की इतनी बड़ी राशि उसके लिए किसी के पास भी न निकली और उसे शकुन्तला की मृत्यु का विश्वास हो गया।

और जब वह अपने घर पहुँचा तो शकुन्तला ने इससे सारी बातें सुनकर बड़े धीरज एवं धैर्य के साथ कहा, "तुम वहां गए ही बेकार थे मेरे मित्र तुम्हें ईश्वर का सहारा छोड़कर इसके बनाये हुए पुतलों के सामने इस तरह अपनी मान मर्यादा नहीं खोनी चाहिए, तुम और तुम्हारा आदर्श इन सबसे बहुत ऊंचा है।"

उसने दुर्गेश से बड़े दुःख और ठहरे हुए स्वर में कहा "तुम इन पूंजी वालों को अच्छी तरह नहीं जानते हो दुर्गेश, यह मन के बहुत ज्यादा काले और कठोर होते हैं। याद रखो कि इनसे दया की आशा बिलकुल इस प्रकार की है जैसे कि कोई समुंद्र की अथाह गहराइयों से पीने के लिए एक घूंट पानी मांगे, न विशाल समुद्र पीने के लिए एक घूंट पानी किसी को दे सकता है और न रेत के पहाड़ ही किसी को जल की एक बूंद दे सकते हैं। यह पूंजीपति भी रेगिस्तान की रेत की भांति हैं।"

और फिर कुछ क्षण के पश्चात उसने दुर्गेश के पिता का तार इसको दिया, लिखा था, तुम अपने साहित्य से अपनी पत्नी का जीवन मांगो तुम मेरे लिए मर चुके हो।"

शकुन्तला ने बहुत प्रेम से इसे ढांढस बंधाते हुए कहा, 'तुमने मेरे जीवन की भीख दर-दर क्यों मांगी ? ईश्वर से ही मांगो, दुर्गेश मैं भी ईश्वर से ही मांगूगी। अगर मेरे जीवन के कुछ दिवस ही बाकी हैं तो मेरा जीवन मुझसे कोई नहीं छीन सकता और अगर मेरे जीवन के दिवस समाप्त हो चुके हैं तो मेरा जीवन तुम्हें किसी चौखट से नहीं मिल सकता। न मैं जर्मनी ही जाकर बच सकती हूं न यूरोप और न ही अमेरिका, सारे संसार के डाक्टर मिलकर भी मुझे नहीं बचा सकते।'

उसने दुर्गेश का माथा चूम लिया, प्यार से बोली, "तुम मेरे लिए कभी भी न कुढ़ना, दुर्गेश, मर जाऊंगी तो क्या होगा सभी संसार में मरते हैं। देखो न, मुमताज' भी मर गई यद्यपि शाहजहां भारतवर्ष का सम्राट था। उसने अपनी प्रेयसी को बचाने को क्या कुछ चेष्टा न की होगी।"

उसने दुर्गेश से कहा, "मुझे अपने मरने की कोई चिन्ता न होगी। इसलिए कि मैं तुम जैसे महान आदर्श वाले मानव की पत्नी बनकर मरूंगी, मृत्यु के बाद भी मेरा नाम तुम्हारे साथ लिया जाता रहेगा, मेरा नाम तो तुम्हारे नाम के साथ मिलकर अमर हो गया है, दुर्गेश, और देखो मर जाऊं तो तुम्हें मेरे प्यार की सौगन्ध कि तुम मेरे गम में पागल होकर अपने कर्तव्य और अपने आदर्श की ओर से मुंह न फेर लेना। मेरे बच्चों को अच्छी शिक्षा और पालन पोषण कराना अपनी भोली-भाली जोसना को हृदय से लगाकर रखना और मेरी बातें इससे बहुत इसलिये न करना कि इसे मेरा गम न हो, और हां ! तुम अपनी

बेटी के लिए भी अपने स्थान से कभी न गिरना, न पुत्री के लिये और न पुत्र के लिए और मेरे पिता या मेरी बहन या इनके सम्बन्धियों के पास भी किसी प्रकार की प्रार्थना लेकर कभी न जाना।"

वह यह सब कहती जा रही थी और दुर्गेश बुत की भांति चुप था। उसके हृदय एवं मस्तिष्क में इस बात की हलचल मची हुई थी कि अगर इसकी शकुन्त इस संसार में न होगी तो वह क्या करेगा? वह गुम-सुम था और अपने दुःखों के अथाह समुद्र में डूबा हुआ था कि वह एक दम बिलकुल बच्चों की तरह शकुन्तला के कन्धे पर सिर रखकर रो पडा। वह बड़ी बेबसी और बेकसी से रो रहा था और फिर एक सप्ताह के अन्दर ही शकुन्तला स्वर्ग सिधार गई।

एक रात उसे दिल का भयानक दौरा पड़ा और कोई इलाज करने से पूर्व ही वह क्षणों में स्वर्ग सिधार गई।

दुर्गेश ने असहाय होकर अपने दोनों बच्चों को अपने हृदय से लगा लिया।

उसका संसार लुट चुका था।

शकुन्तला ने दुर्गेश से अलग होकर उसके जीवन में एक पीड़ा घोल दी थी और साथ-ही साथ उसकी जिम्मेदारियां भी पहले से कहीं अधिक बढ़ गई थीं। इसे हर समय अपने पुत्र अजीत का दिल अपनी मुट्ठी में इसलिए रखना पड़ता था कि वह समझदार है और वह इतना समझता है कि अपनी मां को वह हमेशा के लिए खो चुका है। अजीत जरा-जरा सी बात पर अपनी मा को याद कर-करके रोने लगता था और फिर बड़ी कठिनाई से उसका मन काबू में आता था। अजीत का मन मां के मर जाने के बाद से बहुत कमजोर हो गया था।

और इधर वह भोली-भाली जोसना थी जो अभी केवल दस मास की थी, दस मास की बच्ची और बिना मां की ! दुर्गेश इसकी चिन्ता में पागल था इसे अपनी पुत्री से बहुत प्यार पहले से ही था एक बेटी का अरमान उसके जीवन का सबसे बड़ा अरमान था, अब तो वह बेचारी इस उम्र में बे मां की हो गई थी जबकि अभी अपने संसार में आकर किसी को समझना, पहचानना और जानना भी शुरू न किया था।

जोसना के लिए दुर्गेश ने एक धाय सदैव के लिए रख ली थी किन्तु उसके मन को [illegible] की देख-भाल का विश्वास ही न आता था। [illegible]सका दिल किसी भी मूल्य पर सन्तुष्ट न होता था।

और इसकी नौकरी भी बड़ी दुःखदायी थी। वह समाचार-पत्र के दफ्तर में सायं के तीन बजे जाता था, और रात के दो बजे अन्तिम कापी प्रेस भिजवाकर वापस आता था और सायं के तीन बजे से लेकर रात के दो बजे तक समय उसके लिए बड़ा दुःखपूर्ण होता था। उस एक

क्षण के लिए भी जोसना के बिना चैन न आता था और वह हर क्षण उसी के विषय में सोचता रहता था।

"जोसना कहीं रो न रही हो।"

"क्या पता इसे धाय ने समय पर दूध दिया हो या न दिया हो?"

"शायद वह उसे दूध पिलाना भूल गई हो।"

"क्या पता उसने दूध में पानी की मात्रा अधिक कर दी हो या दूध उसने अधिक गाढ़ा कर दिया हो?"

"हो सकता है कि धाय सो गई हो और मेरी जोसना ने रो-रोकर अपना गला दुखा लिया हो?"

"हो सकता है कि धाय ने इसके रोने पर उसे झुंझलाकर बदतमीजी से बिस्तर पर लिटा दिया हो और वह जोर-जोर से रोने लगी हो।"

वह सोचता।

"वह, उसकी मां तो है नहीं जो इसके लिए हर दुःख उठाए और वह उसे अपने कंधे से लगाकर न टहलती हो तो!"

"और क्या पता वह केवल अपने आराम के लिए इसे केवल आराम से सुला देने के लिए अफीम खिलाने लगी हो।'

और यह सब बातें सोच-सोचकर उसकी आंखों में आंसू आ जाते और उसका काम लिखते-लिखते रुक जाता। वह व्याकुल हो अपने कमरे में टहलने लगता। वह बार-बार दुःख से हाथ मलता। उसका दिल जैसे कि कोई मुट्ठी में दबाकर दबाने लगता, "ईश्वर तेरा क्या बिगड़ जाता यदि मेरी शकुन्त जिन्दा रह जाती और इससे तेरा क्या भला हो गया कि वह मर गई?"

वह जोर से जैसे कि चीख पड़ता।

"तुमने क्यों मार डाला मेरी शकुंत को ? तुम उत्तर दो मुझे इस बात का कि तुमने इसे संसार से उठाकर मेरे जीवन में विष क्यों घोल दिया ? इसके भोले-भाले बच्चों पर तरस क्यों नहीं आया तुम्हें ?"

और फिर वह अपनी कुर्सी पर आकर बैठ जाता और मेज पर अपना सिर रखकर फूट-फूटकर रोने लगता। वह व्याकुल हो-होकर रोता अपनी जोसना के लिए और अपनी शकुंत के लिये और कभी-कभी तो वह दफ्तर से उठकर जोसना को देखने के लिए घर भी भागा जाता।

और फिर उसने कुढ़-कुढ़कर और परेशान हो-होकर एक उपाय सोच लिया और अपने मस्तिष्क में इस उपाय के आते ही वह निश्चित हो गया। उसने एक बहुत ही अच्छी तरकीब सोच ली थी।

और जब वह दूसरे दिन अपने दफ्तर आया तो उसके दफ्तर वालों ने एक बड़ा विचित्र और बिलकुल नवीन और अपनी तरह का विचित्र खेल देखा।

दुर्गेश किरमिच के पालने में अपनी भोली-भाली पुत्री जोसना को रखे चला आ रहा था उसने किरमिच का पालना अपने दाहिने कंधे पर लटका रखा था और जोसना बड़े संतोष से किरमिच के इस पालने के दोनों सूराखों से बाहर अपने दोनों पांव लटकाए पालने से अपनी पीठ टिकाए बैठी थी और आनन्द से बैठी टुकुर-टुकुर देख रही थी और अंगूठा चूस रही थी।

दुर्गेश के दूसरे कंधे से टोकरी लटक रही थी जिसमें थरमस था, दूध का डिब्बा था और कपड़े थे, और खिलौने थे। उसके दफ्तर वाले दुर्गेश को इस तरह से आता देखकर मुस्कराए किन्तु उन्हें दुःख भी हुआ और उनके हृदयों पर चोट भी लगी बेचारा दुर्गेश बाबू काश ! इसकी धर्मपत्नी न मरती।

जब वह अपने कमरे में आया तो दफ्तर वालों की पंक्ति लग गई। इन सबने दुर्गेश को घेर लिया और उस पर प्रश्नों की बौछार हो गई वह सब के सब इस प्यारी बच्ची को पुचकारते और खिलाते भी जा रहे थे।

"यह क्या दुर्गेश जी ?" दफ्तर के बूढ़े एकाउनटेन्ट ने पूछा,, "आप इस बच्ची को यहां ले आये।"

"भाई यह भी खूब रही।" सीनियर न्यूज ऐडीटर साहब मुस्कराए, "आप ने भी कमाल कर दिया।"

"यह यहां रह सकेगी ?"

"आप उसे यहां किस तरह संभाल सकेंगे ?"

"इसका पेशाब पखाना यानी कि ये सब आप से कैसे हो सकेगा ?"

"ईश्वर जीवित रखे, बड़ी सुन्दर लड़की है।"

दुर्गेश के खास चपरासी भोला ने जोसना को पुचकारते और उसके सामने चुटकी बजाते हुए दुर्गेश से कहा, "आप इसकी चिन्ता न कीजिए साहब ! इसकी देखभाल मैं कर लूंगा।"

"धन्यवाद भाई !" दुर्गेश ने आभारी होते हुए कहा।

और फिर उसने दूसरे साथियों से कहा, "क्या करें भाई ? इसकी देखभाल घर पर करने वाला कोई न था, माय है तो नहीं लेकिन यहां दफ्तर में आकर मेरा इसके ध्यान में जी नहीं लगता था।"

और फिर जब वह सब अपनी-अपनी जगहों पर चले गये तब दुर्गेश ने अपने चपरासी भोला से कहा, "तुम मुझसे पैसे लेकर जाओ और बाजार से एक झूला और एक स्टोव फलालेन के टुकड़े और नेपकिन आदि खरीद लाओ। हां और एक चमचा और पतीली भी,

इसीका दूध गर्म करने के लिये। आज से इसकी एक गृहस्थी यहां भी होगी।"

"मैं यह सब चीजें अभी लेकर आता हूं साहब!" और फिर भोला ने सलाह दी, कि 'बेबी' के लिए कुछ कच्छे भी लेकर आता हूँ साहब, घड्ढ़ी बहुत आवश्यक है साहब जरूर मंगवा लीजिए।

"हां, हां, भोला भाई," दुर्गेश ने कहा, "तुम चड्ढियां भी ले आना बेबी के लिए और इसके अलावा इसके लिये जो वस्तुएं आवश्यक हों ले आना मुझे जरा ये बातें कम आती हैं।"

उसने भोला को जेब से निकालकर पैसे दिये और भोला खुशी में भरा हुआ जोसना के लिए खरीदने के लिये चल पड़ा।

नन्हीं जोसना को दुर्गेश ने झूले से निकाल कर फर्श पर छोड़ दिया और वह अब कमरे में इधर उधर घुटनों के बल चल रही थी। खड़ी होती थी और फिर गिर जाती थी और फिर खड़ी होने की कोशिश करती थी और वह कुर्सियों के पांव पकड़कर खड़ी हो जाती थी और इधर उधर आगे पीछे बढ़ने और हटने की कोशिश करती थी। वह अपने खिलौने से खेल रही थी और हूं हूं का शोर मचा रही थी।

और दुर्गेश का दिल सन्तुष्ट था उसे इस बात पर संतोष था कि उसकी यह गुड़िया उसके समक्ष है और इसे अब इस बात की चिंता न थी कि घर पर क्या हो रहा होगा, और क्या न हो रहा होगा?

वह बड़े सन्तोष से अपनी मेज पर बैठ कर काम करने लगा, वह बड़े संतोष से बैठा कल प्रात के समाचार पत्र के लिये विषय बना रहा था और जोसना खेल रही थी वह बीच बीच में अपनी नजरें उठाकर अपनी पुत्री को देखता भी जाता था।

उसकी शकुन्तला मर कर भी उसके पास थी और वह दिन रात उसके विचारों में बसी रहती थी और वह अपनी स्वपन की दुनिया में इससे बातें करता रहता था, वही थी जिससे वह अपने मन की बातें करता रहता था और अपने सुख दुख वह उसी से कहता था।

और यह दिन इस प्रकार बीतते रहे। यहां तक कि दो वर्ष व्यतीत हो गए अब उसकी जोसना बातें करने लग गई थी और यह मीठी मीठी बातों से तुतलाकर अपने बाप का दिल बहलाती थी और उसके साथ नियमित रूप से दफ्तर घर और घर से दफ्तर आती थी अब दुर्गेश ने दफ्तर के अपने कमरे में उसके लिये एक छोटे बिस्तर का प्रबन्ध भी कर लिया। पालने की जगह अब उसके लिए एक छोटा सा पलग आ गया था। पहले दुर्गेश उसे थपक थपक कर उसके झूले में उसे सुलाता था और वह रात के दो बजे तक इसी प्रकार सन्तोष से सोती रहती थी और फिर जब वह घर जाने लगता था तो उसे बड़ी आसानी से उठाकर अपने कन्धे से लगा लेता था और टैक्सी पर भी वह अपने कंधे से ही लगाए रहता था उसने एक टैक्सी उस समय के लिए हमेशा के लिए तय कर रखी थी।

और अब भी वह इसे घर से दफ्तर और दफ्तर से घर इसी भांति

लाता और ले जाता था। जासना दफ्तरवालों से घुल मिल गई थी। यह इस प्रकार कि उसने अपनी आठ मास की आयु से इन्हीं दफ्तर वालों को ही देखा था। जब वह साल सवा साल की थी तो उसने कई बार ऐसा किया था कि स्याही उलट दी, स्याही से अपने हाथ मुंह लाल और नीले कर लिए, कागज इधर से उधर कर दिये और अपने डैडी के लिखे हुये नोटिस फाड दिये, एडीटोरियल नोट चाट गई और कागज तोड मरोड़ दिये। लेकिन किसी अवसर पर दुर्गेश को गुस्सा नहीं आया और न ही अपनी बच्ची की इन भोली शरारतों पर उलझा।

वरन उसने नोटिस पुन: लिख लिये। उसने अखबार का एडीटोरियल फिर से लिखा और अपनी पुत्री को एक जरा सी भी गर्म नजर या तिरछी नजर से नहीं देखा। एक हल्की सी उलझन भी उसकी इन शरारतों से उसके दिमाग में नहीं पैदा हुई।

वरन् उसने सदैव अपनी पुत्री की इन शरारतों पर मुस्कराकर देखा और प्यार से उसे समझाया, "देखो मेरी गुड़िया, यह न किया करो हां, बुरी बात है, समझीं।"

और वह साल सवा साल की नन्ही सी जान अपने पिता को लगातार तकती रहती और सिर हिलाकर कहती कि, हां हां।"

वह इस पर अपनी गर्दन हिलाते हुये, कि हां समझ गई। और थोड़ी देर बाद वह फिर यही शरारतें करती थी और इधर उधर पूरे दफ्तर के कमरे कमरे में कूदती फिरती और दफ्तर के सभी कर्मचारी इससे खेलते और मनोरंजन करते रहते। वह पूरे दफ्तर की प्यारी बेटी थी।

और यहां तक कि दो वर्ष व्यतीत हो गए। वह अपने पिता के

अतिरिक्त दफ्तर वालों से बातें करती रहती और सभी इस पर आनन्द भरते।

दफ्तर में कभी कभी उसका बेटा अजीत भी आता और अपनी बहन को खिलाता रहता और फिर वह घर वापस चला जाता और यह जोसना वहीं रात के दो बजे सोती सोती अपने बाप के कन्धे से लगकर घर जाती।

और घर पहुंचकर दुर्गेश बड़े आराम से अपने पलंग पर लिटा देता। जोसना उसके पास ही सोती थी और अजीत उससे मिले दूसरे पलंग पर सोता था। दुर्गेश रात के लगभग तीन बजे जाकर सोता था और सुबह सात बजे अपने बिस्तर से उठ जाता था, इसलिये कि जोसना सात बजे उठ जाती थी।

वह उठकर सबसे पहले अपनी पुत्री को नहलाता धुलाता फिर कंघी करता और कपड़े बदलवाता और फिर इतनी देर में धाय मेज पर नाश्ता लगा देती और वह अपनी पुत्री को गोद में बैठाकर नाश्ता कराता और स्वयं भी खाता। और इसी प्रकार वह अपने पुत्र और पुत्री के साथ नाश्ता करता और फिर वह अपने पुत्र अजीत को थोड़ी देर पढ़ाता। अजीत अब पाँचवीं कक्षा में पढ़ता था। वह खाना खाकर स्कूल चला जाता तो वह अपनी पुत्री के साथ इधर उधर की बातें करके सो जाता और फिर ठीक एक बजे सोकर उठता और अपनी पुत्री के साथ खाना खाता और फिर ढाई बजे इसे अपने साथ लेकर दफ्तर में चला जाता।

यही उसकी जिन्दगी का नियम था। वास्तव में वह अपनी पुत्री जोसना और अपने पुत्र अजीत के लिये जीवित था। वह अपनी कोशिश और परिश्रम के कारण अपने इन दो बच्चों को संसार तथा देश के लिए आदर्श बनाकर प्रस्तुत करना चाहता था।

और समय इसी भांति व्यतीत होता रहा। यहाँ तक कि छः वर्ष और व्यतीत हो गये। अब जोस्ना स्कूल जाने लगी। वह कान्वेन्ट में पढ़ती थी। दुर्गेश ने घर पर उसे अच्छी तरह पढ़ा लिखाकर तृतीय श्रेणी में परीक्षा दिलाकर प्रवेश कराया था। अब वह पांचवीं श्रेणी में थी। अब उसकी उम्र नौ वर्ष की थी और अजीत सत्रह वर्ष का था। उसने इन्जीनियरिंग कालेज में दाखिला ले रखा था। अब दुर्गेश की बड़ी जिम्मेदारियों और कठिनाईयों की कुछ सीमा तक समाप्त हो गई थी। वह अपने पैदा करने वाले का बहुत आभारी था कि उसका बहुत नाजुक समय समाप्त हो गया और अब उसके दोनों बच्चे अपने हाथ मुंह के हो गये थे।

दुर्गेश को किसी समय एक क्षण के लिये भी यह विचार न आया था कि वह अपनी दूसरी शादी करे। उसने जीवन भर शादी न करने का निश्चय किया। यद्यपि शकुन्तला के बाद ऐसी तजवीजें बार बार रखी गईं थीं पर हर अवसर पर उसने हर प्रकार की बात को घृणा से ठुकरा दिया।

उसके दफ्तर में 'राजी' नाम की एक लड़की काम करती थी। यह लड़की बहुत सुन्दर थी। यह नवयुग की सहायक सम्पादिका भी थी और नवयुग के 'सन्डे एडीशन' में जो स्त्रियों का पन्ना था, उसकी सम्पादिका भी था। बी० ए० थी एक शरीफ और अच्छे परिवार की लड़की थी।

और इस लड़की ने प्रारम्भ में दुर्गेश के जीवन में दबे पांव प्रवेश करने का यत्न किया। वह उसके पास अधिक घनिष्टता में आने की कोशिश कर रही थी। वह जोसना को बहुत प्यार करती थी और दफ्तर में दुर्गेश के बाद जोसना का ध्यान जिसे सबसे अधिक रहता था वह यही लड़की थी। वह जोसना पर मरती थी और उसकी इस कृपा

के लिये दुर्गेश उसका आभारी भी था, लेकिन केवल इस बात के अतिरिक्त अन्य कोई बात न थी। वह इसके आगे की कोई बात सोचता ही न था कि इसी प्रकार तीन वर्ष बीत गये।

और जब इतना लम्बा समय बीतने के बाद राजी ने देखा कि इस प्रकार की इसकी शान्तिमय चाह और लगाव का कोई प्रभाव नहीं पड़ता तो उसने एक दिन दुर्गेश से अपने मन की बात साफ-साफ कहने का प्रयत्न किया।

उसने दुर्गेश से कहा—

"आपसे एक बात कहूँ दुर्गेशजी ?"

"जी", दुर्गेश ने उत्तर दिया, "कहिये।"

"आप बुरा तो न मानेंगे ?"

"क्या बुरा मानने की बात है ?"

"बुरा मानने की बात तो नहीं।"

"फिर आपको यह विचार कैसे आया कि मैं बुरा मानूंगा ?"

"यह इसलिए विचार हुआ कि बात व्यक्तिगत है।"

"कहिये।"

और राजी कुछ संकोच के साथ बोली, "मेरी इच्छा है कि''' आप इसे मेरा पागलपन समझिये चाहिये तो कि''''।"

और वह कहते-कहते रुक गई। उसके मन की बात उसकी आंखों से साफ-साफ कह दी थी कि दुर्गेश के हृदय से एक हल्की सी ठंडी सांस खिचकर बाहर आ गई। वह धीरे से बोला, "इच्छायें हरेक के मन में होती हैं मिस राजी, और यह इच्छायें तो इसलिये कहलाती हैं कि वह पूरी नहीं हुआ करतीं, वह इच्छायें ही क्या जो पूरी हो जाये।"

उसने राजी के साफ-साफ कहने से पहले ही कह दिया, "मेरी इच्छा थी मिस राजी कि शकुन्त का और मेरा साथ जीने-मरने का साथ हो, लेकिन जैसा आप देख रही हैं कि वह मर गई और मैं अभागा मर भी न सका। मेरी यह सबसे बड़ी केवल एक इच्छा थी। जिन इच्छाओं को दिलों में जन्म देने वाला पूरी न कर सका।"

उसने बड़ी गम्भीरता तथा शान्ति से यह बात कही—

"इसलिये आप यह सोचकर क्षमा कर दीजिये मिस राजी कि मै एक ऐसी आग हूं जो कुजला चुकी है और जो अपनी तरफ से किसी को न तो लाभ पहुँचा सकती है और न गर्मी दे सकती है।"

उसने बड़े दुःख के साथ कहा, "तुम मुझे एक चलती-फिरती लाश अधिक न समझो मिस राजी।"

और राजी के दिल पर एक जोर का धक्का लगा, कुछ उसकी इस अवस्था से और कुछ अपनी दशा से भी। मजबूरियां दोनों की थीं और यह दोनों की मजबूरियां अपनी-अपनी जगह अटल थीं। लेकिन उसने एक बार बुझे हुये अंगारे के ऊपर की राख को हटाकर उसे फिर से जगा देने की कोशिश की और कहा, "मुझे भोली जोसना से दिली लगाव और प्रेम है और मै उसे हमेशा अपनी आंखों का तारा बनाकर रखूंगी और यह भी मेरे ईश्वर जानते हैं कि आपके पुत्र अजीत को मैं अपने दिल में जगह देकर पागल हो जाऊंगी। न जाने आपका यह छोटा सा परिवार ऐसा हो गया है—मेरे लिये जैसे कि रात के गहरे काले आकाश के लिए चौदवीं का चांद। आप तीनों का साथ मेरे लिए स्वप्न है जिसे मैं दिन-रात, जागते और सोते देखती रहती हूं।"

उसकी नजरें नीची हो गईं। वह गहरी सांस लेकर बड़बड़ाई, "मेरा यह स्वप्न पूरा न हुआ तो बहुत बुरा होगा, मेरे लिए।"

और बहुत अधिक परेशान होकर दुर्गेश ने राजी के समक्ष अपने दोनों हाथ जोड़ दिए, वह अपने होंठ भींचकर घुटी आवाज में केवल इतना कह सका, "मैं देखने में एक समुन्द्र अवश्य हूं राजी लेकिन मेरा ईश्वर जानता है कि एक छोटी चीटी की प्यास बुझाने को शक्ति नहीं रखता।"

और उसकी आंखों से अपनी शकुन्त की याद में आंसुओं के दो चमकते मोती लुढ़के और उसके सामने रक्खे हुये पैंड में समा गये। उसने रूमाल अपनी जेब से निकालकर आंखों पर रख लिया।

और राजी जो कि इसकी इस स्थिति को देखकर दर्द के अगाध सागर में डूब गई, बड़ी असमर्थता के साथ बोली, मैंने आपके हृयय को दुःख दिया है दुर्गेशजी।" उसने उसके आगे हाथ जोड़ दिये।

"मै अपनी इस निर्दयता का क्षमा प्रार्थी हूं, ईश्वर के लिये मुझे क्षमा कर दीजिये।"

और दुर्गेश मेज के आगे झुककर राजी के जुड़े हुये हाथों को दृढ़ता से पकड़कर बेकाबू रो पड़ा, वह अपनी भर्राई हुई आवाज मे बोला—

"शकुन्तला के बाद मेरे दिल की आंखें हमेशा के लिये अन्धी हो चुकी हैं, राजी।" उसने एक गहरी कराह के साथ अन्तिम शब्द बोले, वह नहीं मरी बल्कि मैं मर गया हूं।"

राजी ने दिल से कहा, वह बड़बड़ाई, "कितनी सौभाग्यशाली है शकुन्तला बहिन, मर कर भी वह जीवित है।"

और उसने दिल में कहा, "और में जीवित रहकर भी मृतक हूं।" वह चोरों की तरह उठकर दुर्गेश के कमरे से बाहर चली गई।

चार वर्ष और व्यतीत हो गये, अब जोसना नवीं श्रेणी में थी और अजीत 'ओटोमोबाइल इंजीनियरिंग' की अन्तिम परीक्षा में बैठने वाला था कि दुर्गेश एक नवीन कठिनाई का शिकार बन गया।

राजधानी का यह प्रसिद्ध पत्र जो दुर्गेश की निगरानी में दिन दूनी और रात चौगुनी उन्नति करके एक बहुत बड़ा 'हिन्दी दैनिक' बन गया था एक बड़े धनिक के हाथों में चला गया, दिल्ली के ओमप्रकाश भल्ला ने इसे खरीद लिया था।

ओमप्रकाश भल्ला की अधीनता में 'नवयुग' को आये हुए दूसरा ही दिन था कि इसे आज्ञा मिली कि वह समाचार-पत्र के नये मालिक श्री ओमप्रकाश भल्ला से मिल ले, इसे मालिक ने बुलाया है।

और वह श्री ओमप्रकाश भल्ला के निर्यात-आयात के दफ्तर में जो कि नई दिल्ली में था उपस्थित हुआ। अब इसका दिल धड़क रहा था कि न जाने इसे नये मालिक ने क्यों बुलाया है? कि चपरासी ने आकर कहा—

"अन्दर जाइये साब, आपको बड़े साब बुला रहे हैं।'

और उसने धड़कते दिल के साथ श्री ओमप्रकाश भल्ला के शानदार, सुसज्जित वातानुकूल कमरे में प्रवेश किया। सामने लगभग इसी की ही आयु का मनुष्य बैठा था।

"बैठ जाओ।"

और उसने मन-ही-मन यह सोचते हुये कि यह मनुष्य कितना घमंडी और बदतमीज है, सामने की कुर्सी पर बैठ गया। अखबार के

नये मालिक ने अपनी गर्दन ऊपर उठाकर प्रश्न किया—

"तुम 'नवयुग' के सम्पादक हो ?"

"जी हा।"

"क्या वेतन मिलता है ?"

"एक हजार।"

"हूं।" उसने पूछा, "शुरू कहा से हुई थी ?"

"छः सौ से।"

और वह एकदम इसकी ओर घृणा से देखते हुये बोला, "तुम्हें नौकरी से निकाला जाता है, अपना त्यागपत्र अभी लिखो।"

और वह एकदम परेशान होकर बोला, "जी, किस अपराध पर ?"

वह क्रोध से इसकी ओर देखकर होंठ काटते हुये बोला, "यह इस अपराध में कि तुम सेठ गगाधर के शत्रु और उसकी पुत्री के हत्यारे हो।"

और दुर्गेश अभी अचम्भित होकर इसकी ओर देख ही रहा था कि ओमप्रकाश भल्ला इसके ऊपर झपड़ पड़ा, "तुम इस योग्य हो कि तुम्हें गोली मार दी जाये।"

दुर्गेश के मस्तक पर बल पड़ गये, और तिलमिलाकर प्रश्न किया, "किन्तु मुझे गोली मारने वाले आप कौन है ?"

दुर्गेश जो कि आत्मसम्मानिय था झुंझलाकर बोला, "क्या तात्पर्य है आपका इन बातों से ?"

"बहुत बड़ा तात्पर्य है मेरा इससे।" ओमप्रकाश भल्ला घृणा की दृष्टि से उससे बोला, "मै गगाधर का दामाद हू।"

"अच्छा", दुर्गेशचन्द्र ने ओमप्रकाश की ओर आश्चर्य से देखा "कि यह बात है।"

"हां।" जब मेरी धमपत्नी को यह ज्ञात हुआ कि तुम इस समाचार-पत्र के सम्पादक हो तो उसने मुझसे कहा कि तुम किसी मूल्य पर इसे खरीद लो।"

"और तुमने यह अखबार खरीद लिया।"

"निःसन्देह।"

"तो इस प्रकार तुम और तुम्हारी पत्नी अपने-आपको मनुष्यों को जीविका देनेवाला ईश्वर समझते हो।" दुर्गेश बड़ं घृणा से बोला, "यदि तुम पूंजीपतियों के अधिकार में हवा, पानी भी हो तो तुम इसे भी हम मानवों तक न पहुँचने दो। क्यों ?"

"बकवास न करो", ओमप्रकाश क्रोध से बोला, "वरन--।"

दुर्गेशचन्द्र इसी प्रकार कटाक्ष करते हुये बोला, "वरना तुम मेरा, हवा और पानी भी बन्द कर दोगे।" फिर उसने असावधानी से कहा "यह नोकरी रख लो अपने पास मैं अभी त्यागपत्र दिए देता हूं और।" मेरा यह त्यागपत्र अपनी धमपत्नी के मुंह पर ले जाकर मार देना।

और यह कहकर क्रोध से कमरे से बाहर आ गया। उसने 'नवयुग' की सम्पादक की नोकरी से त्याग पत्र दे दिया था।

दो वर्ष तक दुर्गेश को किसी जगह मे कोई 'अ फर' न आया। और वह दो वर्ष तक घर पर बैठकर कार्य करता रहा। उसने दो वर्षो के अन्दर बड़ी अच्छी अच्छी कहानियां लिखीं तीन बहुत उच्चकोटि के उपन्यास लिखे और अच्छी अच्छा कवितायें, नज्में, गजलें लिखीं और दो वर्ष तक वह इसी में व्यस्त रहा।

उसके सामने दो ही बातें थीं—जीवन स्तर ऊंचा उठाना और उन्नतिशील तथा अपने दो बच्चो की अच्छी से अच्छी शिक्षा और पालन पोषण ! वह अपने दोनों बच्चों से अत्यधिक प्रेम करता था और उस की बेटी जोसना तो जैसे इसका 'धर्म' हो और उसे हर क्षण प्रसन्न रखना जीवन की सबसे बड़ी सफलता समझता था।

बचपन से लेकर आज उसने अपनी पुत्री जोसना की आंखों में हर दम खुशी ही खोजने का अरमान किया था। और इसके अतिरिक्त, इस संसार में, इससे बढ़कर उसका कोई अरमान न था।

इसकी पुत्री जोसना अब पन्द्रह वर्ष की थी उसने कालेज में प्रवेश कर लिया था और उसका पुत्र इन्जीनियरिंग की उच्चतम शिक्षा के लिये जर्मनी जाने का प्रयत्न कर रहा था। और एक दिन उसने आकर कहा, "डैडी"।

और वह शकुन्तला की याद में खोया हुआ एकदम चौंक पड़ा।

"जी बेटे।"

आपने मुझे जर्मनी भेजने की प्रतिज्ञा की थी न, डैडी ?"

"और वह जर्मनी भेजने की बात पर न जाने कितनी दूर चला

गया । वह सोचने लगा, शकुन्तला को भी जर्मनी ही भेजने की बात थी । जर्मनी ! हेमबर्ग ! जहां जाकर वह शायद बच सकती थी, और वह इसी उसके जीवन के लिये जर्मनी नहीं भेज सका था और उसके मस्तक के पर्दों पर वे सारे ख्याल जो कि शकुन्तला के जर्मनी भेजने की कोशिश में इस तरह सामने आ गये जैसे कि मूर्ति, चित्रपट पर जीवित होकर कहानियां दुहराने लगी हों ।

वह अपने भूतकाल की घटनायें अपने मस्तिष्क में दुहरा रहा था और उसका बेटा जो कि इसके पास ही खड़ा इसकी स्थिति को सावधानी से देख रहा था यह समझा कि शायद इसका बाप इसलिये चिंता में पड़ गया है कि इसके पास इसे जर्मनी में शिक्षा दिलवाने के लिये पैसे नहीं हैं । वह अपने बाप की आर्थिक अवस्था से अपरिचित न न था । वह बोला,—

"आप चिन्ता न कीजीगे, डैडी ।"

और इसका पिता एकदम अपने भूत के दुखों से वापस लौट आया उसने चौंककर अपने प्यारे पुत्र को देखा, वह बड़े प्यार तथा मृदुल स्वर से बोला, "यह तुमने क्या कहा बेटे ! मैं तुम्हें जर्मनी अवश्य भेजूंगा, तुम चिंता न करो ।"

उसने मुस्करा कर अपने बेटे को देखा ।

"अभी से तुम मेरी चिन्तायें अपने सिर पर लेने लगे हो ।"

उसने गर्व और प्रसन्नता पूर्वक अपने बेटे की पीठ को थपका, "शाबास! जीते रहो मेरे बेटे, यह सत्य है कि होनहार. और आज्ञाकारी बेटे अपने कमजोर और बूढे बाप की निर्बलता का सहारा बनते हैं लेकिन तुम्हें अभी से इसकी आवश्यकता नहीं है मेरे प्रिय पुत्र. अभी मेरे शरीर मे शक्ति शेष है जो मनुष्यों का शुभ करने का साहस देती है और मेरे मस्तिष्क मे और मेरे दिल में वह शक्ति विद्यमान है मेरे

बच्चे जो मनुष्यों की रोजी की खोज में इनकी राहों में ज्योति जलाती है।"

उसने अजीत से पूछा, "तुम्हें हर मास कितने रुपयों की आवश्यकता होगी?"

"कम से कम पांच सौ रुपये की, डैडी।"

"कितने वर्ष का यह कोर्स होगा, बेटे?"

"केवल दो वर्ष का, डैडी," अजीत बोला, "लेकिन आपको आधे व्यय का प्रबन्ध करना है, डैडी। इसलिये कि मुझे छात्रवृत्ति भी मिल रही है, डैडी।"

"कोई बात नहीं।" दुर्गेश ने बड़े प्यार से कहा, "मैं तुम्हारे जाने से एक माह पूर्व तुम्हारे नाम पर किसी न किसी भांति करके छः हजार रुपये जमा करवा दूंगा।"

और यह सुनकर अजीत अपने बाप से लिपट गया।

"आप हमारे कितने अच्छे डैडी हैं।"

"बाप, बेटों के लिये जो करते हैं, बेटे वह उनका अहसान नहीं बल्कि कर्तव्य है।" और इसके लिये बेटों को धन्यवाद की कोई आवश्यकता नहीं होती।

उसने व्याख्या की।

शर्त यह है कि बेटे बाप के कर्तव्य को ठीक प्रकार से प्रयोग करें! और इसमें उचित लाभ उठायें और बाप के इस कर्तव्य को गलत रास्ते पर न डाल दें।"

उसने अपने बेटे से कहा, "बेटों के विचारों को परखना एवं नेक कार्यों में सहायक होना मां-बाप का सर्वप्रथम कर्तव्य है। वास्तव में

Accession Number 26053
Class No.

बच्चों के कार्य गलत रास्तों पर न ले जायें, तुम्हारा विचार यह था कि तुम इन्जीनियर बनोगे। मैंने इसमें तुम्हारी सहायता की मैंने तुम्हें यह नहीं कहा कि तुम इन्जीनियर न बनकर वकील बनो, डाक्टर बनो, क्लर्क बनो या कुछ और बनो लेकिन यदि तुम यह कहते कि तुम्हारा आकर्षण यह होता कि तुम गुण्डे बनोगे, स्मगलर बनोगे या कोई और चार सौ बीसी का धंधा करोगे तो साफ प्रकट है कि मैं तुम्हारे इस आकर्षण को उत्तेजित न करके इस आकर्षण का गला घोट डालता।'

उसने बड़े प्यार से अपने पुत्र को समझाया, "हर अच्छा काम अच्छा है और बुरा काम बुरा है, चाहे इसमें कितना ही लाभ क्यों न हो।"

उसने अजीत की आंखों में आंखें डाल दीं "समझे।"

"जी हां डैडी," अजीत ने कहा, "मैं आपकी हर बात समझने की कोशिश करता हूं डैडी, मुझे इस पर पूरा गर्व है कि मैं आपका बेटा हूं। इतने महान लेखक, कवि, शायर और प्रसिद्ध पत्रकार का बेटा होना मेरे सौभाग्य की बात है डैडी।"

उसने गर्व से कहा, "जो समस्त विश्व को खुशहाल फलता-फूलता और शान्तिमय जीवन यापन की दावत देता है। जो प्यार और मुहब्बत से मिलजुल कर रहने का पाठ पढ़ाता है, मैं उसका बेटा हूं डैडी, मुझे इस बात का गर्व है कि मैं आपका बेटा हूं।"

"मेरा बेटा।"

दुर्गेश ने उमड़कर उसे गले से लगा लिया।

१२०४१

दुर्गेश एक बहुत बड़े प्रकाशक के दफ्तर में बैठा था।

"यह तो हमारा सौभाग्य है दुर्गेश जी कि आपके चरण कमल हमारे दफ्तर में पधारे।"

प्रकाशक दुर्गेश के आगे बिछा जा रहा था। दुगश बोला—

"यह श्रीमान जी की कृपा है।"

"नहीं श्रीमान जी यह सच्ची बात है, "उसने कहा।

"हमने तो आपको पत्र लिखकर समय मांगा था कि हम आपसे कब मिल सकते हैं कि आपने स्वय ही आकर हमारी शान में चारचांद लगा दिये।"

और फिर उसने पूछा, "अच्छा, पहले यह तो कहिये कि आप पीयेंगे क्या, चाय-काफी, कोको या कोई ठंडी वस्तु!"

"कुछ भी!"

दुर्गेश ने कहा, "जो आपका जी चाहे मंगवा लीजिए।"

"नहीं! आप कहिए।"

"चाय मगवाइए।"

और फिर थोड़ी देर में चाय आ गई। चाय के साथ और नाश्ता भी था। दुर्गेश बोला, "आपने तो तकल्लुफ की हद कर दी।"

"नहीं, नहीं ! इसमें क्या तकल्लुफ कर दिया साहब ।"

और फिर काम की बात शुरू हुई, प्रकाशक ने जो कई भागी थे बात निकाली, वे सब साझेदार बैठे थे, बात एक ही कर रहा था । काम की बातें अब शुरू हुई तो वे सब भी बोलने लगे, उसमें से एक ने कहा, "आप तो दुर्गेश जी अपनी हर बात हमारे राजेश जी से तय कर लीजिये तो यह तय करेंगे वह हम सब की ओर से स्वीकृत होगी ।"

"बहुत अच्छा !"

दुर्गेश बोला, "यही बात उचित भी होगी ।'

और फिर राजेश ने कहा, "वास्तव में बात यह है दुर्गेश जी कि हमने यह निश्चय किया है कि आपकी पुस्तकें सदैव हमीं छापें ।"

"अवश्य छापिये ।" दुर्गेश ने कहा, "क्या-क्या छापेंगे आप ?"

"जो आप हमें दें ।" राजेश ने कहा, "मैं आपकी हर चीज छापने को तैयार हूं ।" उसने स्पष्ट किया !

"उदाहरण के तौर पर आपकी कवितायें तथा गीतों का संग्रह भी छापेंगे । कहानियों के संग्रह और उपन्यास भी छापेंगे और हिन्दी तथा उर्दू दोनों में छापेंगे ।"

प्रकाशक की बातें सुनकर दुर्गेश को बड़ा सहारा मिला, बोला, "लेकिन मैं अपनी हर पुस्तक 'रायल्टी' पर दूंगा ।"

"स्वीकार है हम रायल्टी पर ही छापेंगे ।"

"क्या रायल्टी देंगे आप ?"

"जो आप आज्ञा करें ।"

और यह प्रकाशक संस्था दुर्गेश को अत्यधिक उचित और सम्माननीय लगी जो लेखकों का खून चूसने वाला न था जो इस बात को

माता था कि मिलकर खाओ और खिलाओ।

दुर्गेश को इस बात के चिह्न साफ नजर आने लगे कि वह अपने बेटे को जर्मन भेज सकेगा. उसने प्रकाशक से कहा, मै आप से पन्द्रह प्रतिशत 'रायल्टी' लूंगा!'

और राजेश एकदम बोला, ' स्वीकार है दुर्गेश जी, आप जो कहेंगे हमें स्वीकार है।''

' मैं वर्ष में तीन उपन्यास, दो कहानी सग्रह और दो गीत सग्रह आपको देने में समर्थ हो सकूंगा।''

' बात बिल्कुल ठीक है दुर्गेश जी।'' राजेश ने कहा, ''और भुगतान कैसे चाहेंगे आप ?''

''वह आप कहिए।''

''नहीं, दुर्गेश जी यह बात भी आपकी इच्छा और पसन्द पर निर्भर है।''

राजेश ने कहा, और दुर्गेश बोला, ''अच्छा तो इस तरह कीजिये कि आप मुझे एक हजार रुपया मासिक दे दिया कीजियगा।''

''हिसाब हम वर्ष में एक बार कर लिया करेंगे।''

''स्वीकार है।''

और स्वीकृति की इस बात को सुनकर ऐसा लगा जैसे कि डूबते को तिनके का सहारा मिल गया हो। इसलिए कि इन वर्षों के समय में इसकी सारी पूंजी समाप्त हो चुकी थी और बैंक बेलेन्स निल के बराबर ही था।

और इस निराश व्यक्ति को सहारा मिल जाने पर प्रकट है कि दुर्गेश को किस भांति खुशी हुई होगी। लेकिन इस दिमाग में एक प्रश्न

बार-बार आ रहा था कि अजीत के छः हजार का क्या होगा।

उसने तो उससे यह प्रतिज्ञा की थी कि वह इसके नाम पर शिक्षा के लिये छः हजार रुपये बैंक में अलग से जमा करा देगा इसलिए वह इसी समस्या को सुलझा रहा था कि राजेश ने बड़ी सहानुभूति और प्रेम से पूछा, "यह आप किस सोच में पड़ गये दुर्गेशजी ?"

और दुर्गेश कुर्सी पर कई अवस्थायें बदलते हुये बोला, "मुझे अपने बेटे को शिक्षा के लिये जर्मनी भेजना है और इसके—।"

राजेश ने दुर्गेश की बात एकदम काट दी, "अपने बेटे के लिए तुरन्त आपको कितना रुपया चाहिए ?"

"छः हजार रुपया इसके नाम पर बैंक में जमा कराना है।" दुर्गेश दबी जबान से बोला, और राजेश एकदम से बोल उठा।

"तो कौन-सी बड़ी बात है यह दुर्गेशजी, आप आज ही अपने बेटे के नाम पर छः हजार रुपया जमा करवा दीजिए।"

यहां दुर्गेश को ऐसा जान पड़ा कि वह स्वप्न देख रहा है, आभार से दबी नजरों से उसने राजेश को देखा, "आप लोग कहीं देवता तो नहीं हैं ?"

"हमने ये प्रकाशन संस्था आप ही जैसे महान और देश के सम्मानीय लेखकों के लिए खोली है, हमें लेखकों और कवियों की कठिनाइयों का अनुभव है, दुर्गेश जी हम उनका कष्ट समझते हैं।"

"आप लोग देवता हैं।" दुर्गेश का गला रुंधने लगा, "काश ! इस देश में आप लोगों जैसे नेक और सज्जन व्यापारी और होते।" और फिर उसने कहा, "वर्ष-भर आप लोग मुझे एक हजार की जगह पांच सौ ही दीजिएगा और इस प्रकार मेरा ऋण उतर जाएगा।"

"अरे ! छोड़िये दुर्गेशजी वह हम सब समझ लेंगे।"

और फिर उसी समय दुर्गेश का उनके साथ सौदा तय हो गया, और दुर्गेश वहां से छः हजार का चैक लेकर वापस हुआ। उसने बारी-बारी इस प्रकाशन संस्था के हर साझीदार से बड़े उत्साह से हाथ मिलाया और अपने मन में आशाओं का प्रकाश लेकर वहां से वापस हुआ।

वह मन और मस्तिष्क से इस प्रकाशन संस्था की अद्भुत सराहना कर रहा था।

दुर्गेश की खुशियों का आज कोई ठिकाना न रहा। आज लगभग पूरे तीन सौ वर्ष की परतन्त्रता के बाद इसका देश अंग्रेजों की आधीनता से स्वतन्त्र हो गया था और वह उस रात जिस रात कि इस कि देश से अंग्रेजों के शासन का सूर्य हमेशा के लिये डूब गया था, वह रातभर अपने दूसरे लेखक मित्रों और कलाकारों के साथ दिल्ली की सड़कों पर खुशी से नाचता, गाता और स्वतन्त्रता का जलूस निकालता रहा था। उसके जीवन में खुशियां ही खुशियां नाच रही थी, हर ओर उसे खुशियां ही नजर आ रही थी उसका देश और आत्मा स्वतन्त्र थी तथा शरीर भी स्वतन्त्र था।"

अब उसकी बेटी प्रथम वर्ष की छात्रा थी। उसका पुत्र बहुत शीघ्र अपनी दो वर्ष की शिक्षा के लिये जर्मनी जाने वाला था और उसके धन का प्रबन्ध भी हो गया था। अब उसे अपने भविष्य की चिंता भी न रह गई थी। इसे एक बहुत ही बड़ा और ईमानदार प्रकाशक मिल गया था जो इसे हर मास एक हजार रुपया देने को तैयार था।

लेकिन इन सब बातों की ओर से सन्तुष्ट होकर भी आज उसका मन अन्दर-ही-अन्दर बहुत उदास और दुखी था। उसका यह दुख शकुन्तला के लिये था जो कि अब इस संसार में न थी और जिसे इस समय को देखने की इतनी बड़ी इच्छा थी। और देश की स्वतन्त्रता

की तड़प लेकर वह गरीब मर गई थी और अब उसके परलोक सिधारने के बाद देश स्वतन्त्र था और उसकी सन्तान अपने हाथ-मुंह के हो गई थी। उसका बेटा जर्मनी तथा बेटी कालिज जा रही थी!

उसने मेज पर रखी हुई शकुन्तला की तस्वीर से बातें शुरु कीं, वह हमेशा शकुन्तला के चित्र से इसी भांति बातें किया करता था मानो कि शकुन्तला इसके समक्ष बैठी हो और वह उससे बातें कर रहा हो।

उसने शकुंतला की तस्वीर को ध्यान से देखा और कहा, ''शकुन्त, बधाई हो तुम्हें आज तुम्हारा देश स्वतन्त्र है। अंग्रेजों की क्रूर परतन्त्रता से तुम्हारे प्यारे देश को छुटकारा मिल गया है और अब प्यारे देश की आंखों में दुख के नहीं वरन खुशी के आंसू झिलमिला रहे हैं, वह मुस्कराकर अपने पुत्र को आशीर्वाद दे रही है और उनकी तर्कों तथा बलिदानों से परतन्त्रता की कड़ी टूट कर बिखर गई है। और शकुन्त अब एक और खुशी की खबर यह है कि तुम्हारा बेटा जर्मनी जा रहा है और तुम्हारी पुत्री, वह भोली जोसना ने अब कालेज में प्रवेश ले लिया है और हां शकुन्त मेरी सब कठिनाइयों के दिन व्यतीत हो गये हैं। और मुझे एक ऐसा सज्जन प्रकाशक मिल गया है कि जो मेरे श्रम का उचित मूल्य देता है। वह मेरा खून नही चूसता।''

उसने शकुन्तला की तस्वीर को उठाकर अपने हृदय से लगा लिया। उसकी आंखों में आंसू छलकने लगे और अब जबकि वह शकुन्तला के चित्र कांपते हाथों में लिये इसे ध्यान से देख रहा था। उसकी आंखों से आंसुओं की बूंदें शकुन्तला चित्र पर टपक पड़ी उसके होंट थरथराने लगे और उसकी स्थिति खराब होने गई और थरथराये हुये होंठ खुले. "सब कुछ है, लेकिन तुम नहीं हो, मेरे शकुन्त—तुम, जो मेरा सब कुछ हो।" और यह कहकर वह फूट-फूट कर रोने लगा।

जब वह जी खोलकर रो चुका तो उसके मन का बोझ हल्का हो गया। उसने शकुन्तला की तस्वीर के फ्रेम के शीशे को जो कि इसके आंसुओं से भीग गया था अपने रूमाल से साफ किया, वह बड़बड़ाया "अब मैं कभी इस तरह व्याकुल होकर नहीं रोऊंगा शकुन्त इसलिए कि तुमने मुझे आंसू बहाने के लिये मना किया था। लेकिन मैं क्या करूं कि तुम मुझे बहुत याद आती हो, मेरी शकुन्त, हर खुशी के अवसर पर मेरा मन बेचैन-सा होकर तुम्हें ढूंढने लगता है। मेरी बेचैन दृष्टि तुम्हें खोजने लगती हैं और जब तुम मुझे इस संसार में कहीं नहीं दिखाई देती तो मैं रो पड़ता हूँ।

उसने तस्वीर पर अपनी दृष्टि गाड़ दी।

"तुम मुझे अकेला छोड़कर क्यों चली गई, शकुन्त ? आखिर क्यों ? कोई कारण भी तो हो इस जान का तुमने अकेला रहने की यह सजा क्यों दी ? मेरा जी इस संसार में तुम्हारे बिना नहीं लगता

वह एक देर रुककर फिर बड़बड़ाया, "मैंने तुम्हारे बच्चों को दिन और रात एक-एक करके पाला है और बड़ा किया है। उन्हें मैंने किसी प्रकार का दुःख नहीं दिया और किसी प्रकार का दुःख मेरी ओर से नहीं पहुँचने दिया। मैंने तुम्हारे प्रवीण और शोभना के लिये उनकी खुशी के लिये अपना जीवन उन्हें दिया हुआ है। मैंने उनकी आंखों में खुशियों की मालाएं सजाई हैं। मैंने उन दोनों के दिलों में सुन्दर फूलों का बगीचा लगाया है और इन्हें कभी तनिक-सा भी दुःखी नहीं होने दिया। इसलिये नहीं कि वह मेरी सन्तान हैं बल्कि इसलिये कि ये तुम्हारे बगीचे के फूल हैं। और तुम्हारे बगीचे के इन फूलों को सदैव खिलाके रखना। यह मैंने आपसे प्रतिज्ञा की थी।"

वह शकुन्तला की तस्वीर चूमते हुये बड़बड़ाया, "अब तुम भी मुझसे

एक प्रतिज्ञा करो शकुन्त । इस बात की प्रतिज्ञा कि तुम मुझे अब बहुत शीघ्र अपने पास बुला लोगी । तुम्हारी पृथकता का यह समय अब मुझ से तुम्हारी कसम व्यतीत न होता और अब मेरा और काम इस संसार में शेष नहीं रह गया । मैं जर्मनी से तुम्हारे पुत्र के वापस आते ही उस किसी अच्छी जगह शादी कर दूंगा और फिर तुम्हारी जोसना को भी भी अच्छी जगह ब्याह दूंगा । बस वह एम० ए० करले और तुम्हारा देश जो कि परतन्त्र था और वह भी अब परतन्त्रता की बेड़ियों को तोड़कर स्वतन्त्र हो चुका है । बस अब मैं इस संसार में और अधिक समय तक जीवित रहना नहीं चाहता ।"

उसने शकुन्तला की तस्वीर से बड़े दुख के साथ कहा, "तुम्हारे बिना मैं इस तरह जीवित हूँ शकुन्त ! जैसे बिना तेल के बाती, जो स्वयं जल-जलकर दबी-दबी, और लम्बी लम्बी रोशनी फैला रही है और अन्धेरे जिसे निगले लिये जा रहे हों ।"

उसकी आंखें फिर भर आईं वह व्याकुल होकर चीखा, "अब मैं अधिक समय तक तुम्हारे बिना इस जीवन की आग में जलना नहीं चाहता शकुन्त ।"

उसने मेज पर तस्वीर रख दी और अपना सिर इसके ऊपर रख कर व्याकुल होकर रोने लगा ।

वह बेकाबू होकर शकुन्तला की तस्वीर के पास भागा हुआ आया और बेचैनी के साथ कहने लगा, "शकुन्त ! शकुन्त ! यह देखो मैं तुम्हारे और अपने और करोड़ों देशवासियों के प्यारे देश की स्वतन्त्रता पर कुछ शेर कहे हैं, तुम्हें सुनाता हूं तुम बताओ कि ये शेर कैसे हैं ? मुशायरा में तो यह बहुत अधिक पसन्द किये हैं । प्रशंसा के सैकड़ों, हजारों पुल सुनने वालों ने एक साथ खड़े कर दिये हैं । लो तुम भी सुनो ।"

और फिर शकुन्तला की तस्वीर को अपने कहे हुये शेर सुनाने लगा

''दिल की धड़कन नग्मा जन है अब वतन आज़ाद है,

वह चमन जो लुट गया था, वह चमन आबाद है!

घुटके दम तोड़ा था जिसने, वह बहन आज़ाद है,

देश का एक कोना-कोना, हर सहन आज़ाद है!

दिल की धड़कन...

वादियां जो दिल की सुनती थीं महक उठी है आज,

कैसा औंधे मुंह गिरा है देख लो ब्रटिश का राज!

अब नहीं हम पर मुसल्लत कोई तख्त और कोई ताज,

शेख भी आज़ाद है और ब्राह्मण भी आज़ाद है!

दिल की धड़कन—

खत्म हो फिरका परस्ती, खत्म हों अब यह फ़िसाद,

दाढ़ी, चोटी का न झगड़ा हो न हो कोई तजाद!

एक हम हों सब यहां और खत्म हों सारे अनाद,

आज़ाद अब धरती हमारी है गगन आज़ाद है!

दिल की धड़कन—

अब न जनता भूख से तड़फे न रोटी का हो काल,

नाम हो ऊंचा वतन का हम चलें वह नेक चाल!

तोड़ डालें सारे फन्दे फाड़ डालें सारे जाल,

देश सा अनमोल मोती यह रत्न आज़ाद है!

दिल की धड़कन...

अब न हम जाहिल रहेंगे और न काहिल बेहुनर,

बरकतों और रफहतों से हम भरेंगे अपने घर !

हम समेटेंगे जमाने भर से नेकी के गोहर,

अब अनादल नग्माजन हैं अब चमन आजाद है !

दिल की धड़कन…

सोके हम जागे हैं, अब हम और सोने के नहीं,

खोके पाया है जो हमने अब वो खोने के नहीं !

नफरतों के बीज अब हम दिल में बोने के नहीं,

अब वतन का बच्चा-बच्चा है मगन आजाद !

दिल की धड़कन…

उसने अपनी ये शायरी शकुन्तला को बड़े चाव और उत्साह से सुनाई और फिर वह शकुन्तला को दुःख के साथ देखने लगा, उसने शकुन्तला की तस्वीर से पूछा, "मेरे यह विचार तुम्हें कैसे लगे शकुन्त पसन्द आई यह मेरी कविता ?"

उसने शकुन्तला की तस्वीर को देखते हुये बड़ी हसरत से कहा, "काश ! तुम इतनी शीघ्र मुझसे पृथक् न हो जाती शकुंत।"
यह कहते हुए उसका स्वर भर्राया, वह मेज पर अपना सिर रखे फूट-फूटकर रो रहा था।"

जोसना अब बी॰ए॰ फाइनल की छात्रा थी। एक युवक ने इसी वर्ष इस कालिज में आकर प्रवेश किया, यह पहले देहरादून में था। इस लड़के का नाम अजयकुमार था। यह लडका सुन्दर, स्वस्थ और अत्यधिक बुद्धिमान तथा फुर्तीला था। इस कालिज में आते ही वह दूसरों की दृष्टि का केन्द्र बन गया और आते ही उसने भी लडकों से मित्रता बढ़ानी शुरू कर दी।

वह इतना अधिक चित्ताकर्षक था कि कालिज की छात्रायें इसे देखकर कशमसाने लगीं। लडकियां इसे देखकर एक विचित्र प्रकार की हलचल का अनुभव करने लगीं। लेकिन जोसना, वह इन लड़कियों में न थी जो पहली ही नजर में कशमसाना शुरू कर देती वह बहुत अधिक आत्मसम्मानीय तथा ऐसी बातों से बचकर रहने वाली लड़की थी। वह कालिज प्यार करने नहीं वरन् शिक्षा पाने आती थी। वह अपनी शिक्षा में ध्यान लगा रही थी कि एक दिन उसकी सहेली उर्मिला ने उससे कानाफूंसी वाले ढंग में बात शुरू की, "जोसना!"

उर्मिला ने धीरे से इसका नाम लिया और वह जोकि नोटस लिख रही थी। एकदम चोंक कर बोली, "जी!"

"किस संसार में खोकर रह गई हो जी तुम?" उर्मिला ने इसे

एव सकेत किया ।

ग्रोर वह बड़े ग्राश्चर्य मे उर्मिला की ग्रोर देखकर धीरे से बोली, नोट्स तैयार कर रही हू ।'

"पागल ।" उर्मिला इसे शरारत भरी नजरों से देखते हुए बेजारी मे बोली, "तुम सारी उम्र इसी प्रकार नोट्स ही तैयार करती रह जाग्रोगी, लगता है ?"

जोसना हैरानी से बोली, "फिर क्या करू ?"

"कभी-कभी दिल की ग्रांखें खोलकर भी देख लिया करो ।"

"मैं समझी नहीं ।" वह भालेपन से बोली, "क्या देखा करू ?"

"देखनेवाली चीजें ।"

"देखनेवाली चीजें ! क्या चीज ऐसी खास देखनेवाली है जो मै नहीं देखती ?"

'देखती हो ग्रपना सिर ।" उर्मिला ने कानाफूसी करते हुये कहा ?' "कभी देखा भी है कुछ ?"

"क्या भाई," जोसना उलझकर बोली, "तुम मुझे काम करने दो ।'

"ग्ररे काम तो होते ही रहेंगे,' उसने इसकी बांह में हलकी-सी प्यार की चुटकी ली, "मेरी ग्रोर देखो ।"

जोसना ग्रपनी कलम रोककर उसकी ग्रोर देखने लगी ग्रोर भोले-पन से बोली, "तो देख रही हूँ तुम्हारी ग्रोर," वह मुस्करा दी, "कई बार तो तुमसे कह चुकी हूँ कि तुम वहुत सुन्दर हो ।"

"ग्ररे ! मेरी सुन्दरता से तुझे क्या मिलेगा, री !'

"फिर ।"

"उसे देख जिसकी सुन्दरता से तुझे कुछ मिल सकेगा।"

जोसना कुछ न समझते हुये उलझकर बोली, "न जाने तुम क्या बकती हो जी, मुझे काम करने दो।"

उर्मिला ने उसकी चुटकी भरते हुये कहा, "कभी गुलफाम देखा है! तुमने!"

"मैं सब्जपरी थोड़े ही हूँ कि गुलफाम देखती फिरूँ", जोसना मुस्करा दी और उर्मिला बोली, "अरे है तो 'सब्जपरी' यह तुझे स्वयं नहीं मालूम।"

"फिर वह तुरन्त ही बोली, "तुझे गुलफाम दिखाऊं?"

"मुझे गुलफामों से कोई दिलचस्पी नहीं, समझे।"

"दिलचस्पी नहीं होती तो उत्पन्न की जाती है।"

"तू मुझे नोटस पूरे करने देगी, या नहीं?"

"नहीं।"

जोसना ने अपना कलम दांतों में दबाकर उसकी ओर देखा, "लो भाई, हमने नोट्स लिखने बन्द कर दिये, बस।"

"तो फिर अब गुलफाम देख ले।" उर्मिला ने धीरे से अपने दायें हाथ की ओर अपनी सीट पर बैठे हुये अजय की ओर संकेत किया, "यह रहा गुलफाम।"

जोसना मुस्करा दी, और बोली, "इसे तू गुलफाम कह रही है।"

"क्यों! [illegible] गुलफाम नहीं है!"

"अरे! नहीं, नहीं यह गुलफाम-गुलफाम नहीं है।"

"फिर!"

"है एक!"

"क्या!"

"मामूली रूप का एक साधारण मनुष्य," जोसना मुस्करा दी, "और आदमी को मुंजसर नहीं इन्सान होना कि यह तो मनुष्य भी नहीं है।"

"अरे!" उर्मिला आश्चर्य से बोली, "फिर यह क्या है!"

"लोफर।"

"लोफर।" उर्मिला अचम्भित होते हुये बोली, 'तुझे कैसे मालूम हुआ कि यह लोफर है!'

तरह-तरह से सजकर और औरतों की भांति 'मेकप' करके कालिज आनेवाले लोफर नहीं तो और क्या होते हैं।" जोसना ने कहा, "इस प्रकार के लोग अध्ययन कम और प्रचार अधिक करते हैं, स्कूलों और कालिजों में शृंगार करके आनेवालों के विषय में मेरी यह राय है। मैं सदैव यही कहती हूं कि यह इश्तहार है, इस बात का कि हम भी कुछ हैं।"

"ऊंह!" उर्मिला ने मुंह बनाया, "तू तो अभी से बुढ़िया होकर दादी, अम्माओं जैसी बातें करने लगी है।" वह बेजारी से बोली, "तू पागल है।"

जोसना मुस्करा दी, "मैं मूर्ख ही भली बाबा!"

उसने प्यार भरी दृष्टि से उर्मिला की ओर देखकर कहा, "तू ही देखती रहे अपने गुलफाम को।"

फिर वह अपने नोट्स की ओर लग गई।"

"ईडियट" उर्मिला बड़बड़ाई, "लगता है कि इसके दिल की आंखें अभी तक नहीं खुली!"

अजयकुमार जोसना को आते हुये देखकर बड़बड़ाया, "यह लड़की शायद अभी व्यस्क नहीं हुई।"

उसने अपना निचला होंठ काटा. वह कुछ सोच रहा था वह फिर बड़बडाया, "मै हूँ कि इस पर मरता हूं कि यह है कि मेरी ओर आंख उठाकर भी नहीं देखनी।"

वह प्रसन्न हो गया, "अजीब लड़की है यह।"

वह लड़की जो कि बकौल उसके शायद अभी तक वयस्क नहीं हुई थी इसके पास से गुजरी और वह एकदम साहस करते हुये सम्मान से बोला "मैं एक बात कहूँ आपसे !"

जोसना ने जो कि इसके बिल्कुल पास ही खड़ी थी अपनी दृष्टि ऊपर की ओर स्वत: ही उसके चेहर पर से हटकर फर्श पर गिर गई। वह अजयकुमार की आकर्षक आंखों से बच न सकी। उसका हृदय इस प्रकार से धड़का कि वह अपने दिल के इस प्रेम पथ, और उसके इस आकर्षण पर अनमनी हो गई।

जैसे कि उसके तन बदन में अचानक बिजलियां समा गई, उसके दिल में अंगारे दहकने लगे और उसका समस्त शरीर ठंडे पसीने में लथपथ हो गया। और उसने कुछ बोलने की चेष्टा की मगर अपने होंठ

न हिला सकी। अजयकुमार जो इसे सिर से पांव तक ध्यान से देख रहा था बोला, "आपने मेरी बात का जवाब नहीं दिया।"

और उधर बोखलाकर उसने इसी तरह अपनी दृष्टि नीचे किये-किये उत्तर दिया, "कहिए"

"आप मेरी दो बातें सुन सकती हैं !" उसके कहने के ढंग में प्रार्थना थी।" मैं केवल दो बातें आपसे करना चाहता हूं।"

और वह हां और न, की कशमकश में अधिक फंसकर एकदम बोली, "कहिये।"

अजयकुमार खुशी से पागल होते हुये बोला, "श्रीमान मलहोत्रा के भाषण के बाद।"

यह कहकर वह आगे बढ़ गया और वह मरी हुई गति के साथ भाषण कक्ष की ओर चली गई।

"आज तुम नोट्स नहीं ले रही हो !" उसकी सखी उर्मिला ने छेड़ने वाले ढंग में उससे पूछा, और वह जो कि भाषण सुन रही थी हड़बड़ाकर बोली, "क्या पूछ रही हो तुम।"

उर्मिला ने इसकी ओर देखकर मुस्कराते हुये कहा, "अब ऐसा भी क्या सोच लग गया तुम्हें !" उसके कहने के ढंग मे चुकीलापन ही था, "खैर तो है, कहीं दिल-विल के विषय में कोई घटना तो सामने नहीं आ गई !"

वह इस अनुमान से सहम गई जैसे कि उर्मिला इसकी सखी नहीं वरन इसकी नानी, दादी या अम्मा हो और इसके दिल का चोर उसने पकड़ लिया हो वह हड़बड़ा कर बोली, "मैं अपनी भाभी के विषय में सोच रही हूं।"

"भाभी !"

"हां-हां।"

"तो क्या तुम्हारे भाई का विवाह हो गया !"

"नहीं तो।"

उर्मिला मुस्करा दी।

"फिर यह भाभी जी एकदम कहां से आकर कूद पड़ीं !"

"बस अब आनेवाली ही हैं।"

और जोसना की भाभी अब वास्तव में आनेवाली ही थी उसका भाई अजीत हेम्बर्ग से इंजीनियरिंग का डिपलोमा लेकर वापस आ गया था और बम्बई की बड़ी फर्म में उसे अठारह सो रुपया मासिक की नोकरी भी मिल गई थी और वह वहीं बम्बई में था कि इधर इसके डेडी ने उसके भाई के लिये अपनी पसन्द की लड़की का चुनाव भी कर लिया था।

जोसना की होनेवाली भाभी का नाम अरुशी था और वह उसके डैडी के एक कवि मित्र चेतन जी की सबसे बड़ी सुपुत्री थी। अत्यन्त सुन्दर और गुणवती थी। लेकिन एक निर्धन पिता की सुपुत्री थी और इसलिए वह अधिक शिक्षित न थी। उसने हिन्दी की कोई बड़ी परीक्षा न पास की थी। और अंग्रेजी में वह केवल आठवीं कक्षा तक पढ़ी हुई थी। और उसके डैडी ने केवल अपने मित्र कवि चेतनजी के कहने पर इनकी सुपुत्री का विवाह अपने सुपुत्र के साथ करने का वचन इन्हें दिया था। कवि चेतन जी ने उसके डैडी से कहा था," "एक बात कहूं मित्र अगर स्वीकार कर लो तो जीवन भर का उपकार न भूलूंगा।"

और उसके डैडी ने नम्रता से कहा, "कहिए चेतन जी अगर वह बात मेरे बस की होगी तो उसे पूर्ण करने में अपनी जान लड़ा दूंगा।"

"वह इतनी कठिन तो नहीं।"

"तो फिर कह दीजिए।"

"इस विश्वास के साथ कि मेरी बात आप टालेंगे नहीं।"

"अगर वह बात मेरे बस की हुई तो..."

"बस की बात तो अवश्य है आपके।"

"फिर कहने में आप देर क्यों लगा रहे हैं!"

"इस भय से कि अगर आपकी ओर से इंकार हो जाता तो मेरे मन की शान्ति छिन जायेगी और फिर..."

और उसके डैडी ने झट से बात काटकर कहा था, "अगर बात मेरे [illegible]की है तो इंकार न होगा चेतन जी।"

"तो लाओ हाथ।"

और उसके डैडी दुर्गेशचन्द्र ने बगैर झिझक के अपना हाथ चेतन जी के हाथ में दे दिया, और चेतन जी ने एकदम कह डाला था, "मेरी सबसे बड़ी चिन्ता तुम दूर कर दो मित्र, मेरी पुत्री अरुणी का तुम अपनी बहू बना कर मुझपर बहुत बड़ा उपकार करोगे, मेरी इच्छा है कि वह अजीत की दुलहन बन जाए।"

"और यह सुनकर उसके डैडी ने हंसते हुये कहा था, "यह तो अपने बस की ही बात निकली चेतनजी, मुझे तुम्हारी यह बात मान लेने में कोई परेशानी नहीं प्रतीत होती।"

उन्होंने कहा था, "मेरा विचार है कि मेरा पुत्र बड़ा आज्ञाकारी है। वह मेरी पसन्द को नापसन्द नहीं करेगा। मुझे आपकी पुत्री अरुणी दिल से पसन्द है, यह रिश्ता बहुत अच्छा है। लेकिन..."

और कवि चेतनजी इस लेकिन को सुनते ही व्याकुल होकर बोले, "लेकिन क्या, मित्र। लेकिन के आगे कोई ऐसी बात तो न कहोगे जो मुझ गरीब का दिल तोड़ दे?"

वह बड़ी गम्भीर मुद्रा में बोले, "मेरा दिल न तोड़ डालना मित्र, यह न हो कि बात भी कोई इल्तजा करके।"

"नहीं, नहीं। ऐसी बात कोई नहीं है।"

इसके डैडी ने कवि चेतनजी के कन्धे पर अपना प्यार भरा हाथ रखकर कहा था, उसकी वाणी में अपनापन, शराफत, प्यार और मिठास था। एक ऐसा बढ़ावा था कि इसकी इस बीरच में जो टूटे हुये दिलों

को भी जोड दे, उन्होंने कहा था, "आप चिन्ता न कीजिये, चेतनजी यह बात सौ फीसदी उचित ही समझिये बस एक जरा अजीत की राय मैं ले लूं।"

और इसपर चेतनजी एकदम चिन्तित होकर बोल उठे, उन्होंने जैसे कि उसके डैडी ही से डरते-डरते पूछा था, "आपका पुत्र अजीत अस्वीकार तो न कर देगा कहीं, दुर्गेशजी, इसलिये कि वह बड़ा पढ़ा-लिखा है विदेश हो आया है और मेरी पुत्री इसके समक्ष अनपढ़ और गंवार है। और हम गरीब भी हैं।"

और वह कहते-कहते उसका कंठ रुंध गया था कि उसके डैडी दुर्गेशचन्द्र ने जोर बमते हुये हड़बड़ाकर कहा था, "अरे, अरे, यह क्या, कैसी बातें करते हैं आप चेतनजी। मेरा पुत्र, मेरा पुत्र है।" उन्होंने यह अन्तिम वाक्य सीना तानकर बड़े गर्व के साथ कहा था, "वह मेरी बात कभी न टालेगा और अगर उसने मेरा कहा न माना तो मैं अपनी बेटी अरुणी के लिये अजीत से भी लाइक होनहार और अच्छा रिश्ता ढूंढूंगा और मैं अजीत की सूरत भी फिर न देखूंगा। यह आप अच्छी तरह समझ लीजिये।"

और फिर उसी दिन उसके डैडी ने अजीत को लिखा था—

मेरे बहुत ही प्यारे पुत्र, जीते रहो और प्रसन्न रहो

मेरे भई तुमसे एक सलाह लेनी है, पुत्र, वह अपने मित्र कवि चेतनजी की पुत्री अरुणी के साथ में तुम्हारे रिश्ते की बात कर रहा हूं। तुम्हें वह लड़की अरुणी याद है न। बड़ी प्यारी बच्ची है अच्छे आचरण वाली, गुणवति और सुन्दर है। पढ़ी-लिखी जरा कम है। भाई अंग्रेजी आठवीं कक्षा तक ही पढ़ी है, लेकिन यह ऐसी कोई बात नहीं है। तुम चाहें मुझे पुराने विचारों का ही समझ लो, लेकिन यह वास्तविकता है

कि मैं लड़कियों के कम पढ़े-लिखे होने को बुरा नहीं समझता, इनमें घर चलाने का तरीका और समझदारी अवश्य होनी चाहिए, यह आवश्यक समझता हूँ।

अगर तुम्हें अस्वीकार न हो तो लिखो ताकि मैं अपने मित्र चेतनजी से बात पक्की कर लूं, मै तुम्हारी शादी के फर्ज से भी छुटकारा पा जाना चाहता हूं। पुत्र !

तुम्हारा शुभेच्छुक
तुम्हारा डैडी—
दुर्गाचन्द्र

और फिर उसके भैया अजीत की ओर से इस पत्र का उत्तर तुरन्त ही आया। उसने लिखा था—
सम्माननीय डैडी, प्रणाम !

आपका पत्र पाकर इतना अधिक खुशी हुई कि मैं वर्णन नहीं कर सकता मुसलमानों को ईद और हिन्दुओं को दीवाली की भी इतनी अधिक खुशी न होती होगी जितना आपके पत्र मिलने से हुई है। ऐसा लग रहा है कि ईद का उन्तीस का चांद निकल आया हो, जैसे कि दीवाली के अनगिनत दीप एक साथ झिलमिला गए हों।

इन विषयों में आपको मुझसे पूछने की क्या आवश्यकता है डैडी। आपकी आज्ञा मेरा धर्म और आपकी पसन्द मेरा सबसे बड़ा इनाम है। आपको मेरी कसम है डैडी कि आप किसी बात के लिए मुझसे न पूछा कीजिए वरन मुझे आज्ञा किया कीजिए। आपकी आज्ञा मेरा धर्म और कर्तव्य है।

आपने जोसना के विषय में कुछ नहीं लिखा। वह दिल लगाकर अध्ययन कर रही है न डैडी ! उसे मेरा आशीर्वाद कह दीजिएगा और

कहिएगा कि वह अपने अध्ययन में पूरा-पूरा ध्यान दे। मैं अगले मास दिल्ली चार दिन के लिए आ रहा हूं।

आपका आज्ञाकारी पुत्र
अजीत।

फिर इस पत्र के बाद उसके पिता ने यह रिश्ता पक्का कर दिया था और अब 'अरुशी' अगले ही मास उसकी भाभी बनकर उसके घर आनेवाली थी। और वह अरुशी को अपनी भाभी बनता देखकर खुशी से फूली इसलिए नहीं समा रही थी कि अरुशी इसकी प्रिय सखी थी यद्यपि वह उससे उम्र में दो वर्ष बड़ी थी लेकिन दोनों की बड़ी गहरी छनती थी। और अरुशी के पिता और इसके डैडी बहुत पुराने मित्र थे और इनका एक-दूसरे के यहां आना-जाना आम तो था वह दोनों बचपन ही से एक दूसरे के साथ खेल-कूद कर इतनी बड़ी हुई थी।

और फिर उसकी बचपन की सहेली अरुणी उसकी भाभी बनकर उसके घर आ गई और उसकी खुशियों का ठिकाना न रहा। दुर्गेश अपने एक और फर्ज से मुक्त हो गया था।

और फिर अरुणी इसके भाई अजीत के साथ दस दिन यहाँ रहकर उसके साथ बम्बई चली गयी और उसे ऐसा महसूस हुआ जैसे कि उसने बहुत कुछ पाकर एकदम खो दिया हो।

और यह पाने और खोने का विचार इसे अब इसलिए होने लगा था कि वह अजयकुमार के प्रेम में बन्दी बन चुकी थी और वह अजय की मुहब्बत में अधिक आगे बढ़ गई थी कि जहाँ पहुँचकर कभी कोई वापस लौट ही न सका।

और यदि समय, परिस्थितियां और संसार ने ऐसे प्रेम करने वालों को इनकी मंजिल से इन्हें वापस लाने का यत्न किया है तो सदैव मुंह की खाई है और मंजिल से भी आगे दूर बहुत दूर निकल जाने वाले ये प्रेमी कभी वापस नहीं हुए। उनकी मुहब्बत और प्यार वापस नहीं लौटे इस प्रकार इनकी लाशों को वापस लाने में संसार अवश्य सफल होता रहा है।

और अब यही वह अवस्था थी और यही वह मंजिल थी जहाँ ज्योत्सना और अजय आकर खड़े हो गए थे। उन्होंने प्यार एक-दूसरे से

किया नहीं था वरन वह प्यार उन्हें हो गया था एक दूसरे से व्यर्थ के लिए। जैसे कि जबरदस्ती कोई किसी को अनजानेपन में कुयें में धक्का दे दे।

जोसना इस प्रकार की लड़की नहीं थी कि वह और लड़कियों की भांति स्वयं को प्रदर्शनी के रूप में पेश करती फिरे और जानबूझकर यह चाहे और कोशिश करे कि इसे कोई देखे और पसन्द करे तथा कोई चाहने लगे।

वह अपने आपको इस प्रकार की दशा तक से दूर रखती थी। वह सदा अपने अध्ययन में मग्न रहती थी और इन तमाशों से भी दूर भागती थी। जहां लड़के और लड़कियां एक दूसरे के पास आ सकते हैं।

उसने कभी आंख उठाकर भी किसी खास तात्पर्य के लिए अजय को नहीं देखा था। उसने कभी इस नए आए हुए अजय के विषय में जानने की चेष्टा भी न की थी कि वह कौन है? क्या है? कहां से आया है? और उसने उस दिन अपनी सखी उर्मिला के ध्यान दिलाने पर भी अजय को कोई महत्व न दिया था कि वह मुफ्त में केवल बैठे ही उस दिन उसके प्रेम का शिकार बन गई।

अजय ने उसे पास से गुजरते हुए रोक लिया और इतने पास से उसे देखकर अपना सारा गर्व और अभिमान खो बैठी। उसे स्वयं यह पता न चला कि वह कौन-सा ऐसा जादू था जिसके कारण बाध्य होकर वह अजय के समक्ष अपना सर्वस्व खो बैठी।

और यह कसूर उसका .... नहीं; और यदि वह कसूर कहा जा सकता है तो यह उस विधाता का था उसका स्वयं का नहीं था। वह इस कसूर की ओर से बिलकुल ही निर्दोष थी। कसूर था तो यह कसूर कामदेव का था और स्वयं विधाता का था वह

कसूर कि उसके दिल को उसने अजय के प्यार में क्यों धड़कने दिया।

इस गरीब ने स्वयं ही अपने पांव पर कुल्हाड़ी बिल्कुल नहीं मारी थी वह इस कसूर और इस दोष की ओर से जितनी भोली थी जितना कि भोला एक बच्चा होता है। वह बच्चा! जो कि स्वयं बढ़कर आग पकड़ लेता है और जल जाता है।

वह तो इस भोले बच्चे से भी अधिक भोली इसलिए थी कि उसने स्वयं ही बढ़कर प्यार की इस आग को पकड़ा भी तथा इस आग ने लपककर उसे खुद पकड़ लिया था। बिलकुल इसी तरह जिस तरह सोए हुए कबूतर को अचानक बिल्ली आकर पकड़ लेती है।

अब वह प्यार की इस आग में बिलकुल इस प्रकार से जल रही थी कि जिस प्रकार से इस संसार में इस प्यार की आग में और दूसरे जला करते हैं और आदम के बेटे से लेकर इस समय प्यार की आग में हर जलने वाला बिलकुल इस प्रकार से जलता चला आया है।

जोसना को अब अजय के बिना एक पल के लिए भी चैन न आता था वह यह चाहती थी कि बस अजय हो और वह हो और उसके सामने हर समय रहा करे और उससे बातें करती रहे और यही हाल अजय का भी था वह यही चाहता था।

और दोनों का यह प्यार इन दोनों को किसी-न-किसी बहाने में एक कर दिया करता था वे दोनों संसार की आंखों से अपने ख्याल में बचे रहकर [illegible]

मिलते थे और संसार को भूलकर एक-दूसरे से बातें करते रहा करते थे। न जाने कहां-कहां की बातें ऐसी-ऐसी बातें जो कभी समाप्त होने का नाम ही न लेती थीं।

अतः आज भी वह दोनों कनाट प्लेस में इकट्ठे थे और इण्डियागेट के पास मखमल जैसी घास पर आमने-सामने बैठे बातें कर रहे थे।

अजय ने कहा, "जी चाहता है जोसना यह संसार कभी समाप्त न हो और हम एक-दूसरे के सम्मुख बैठे हुये इसी प्रकार बातें करते रहें।"

"हां!" जोसना बोली, "मेरा भी यही विचार है। अजय जो तुम्हारा है।"

अजय बोला, "लेकिन हम इस तरह संसार की आंखों में धूल झोंक-झोंककर भला कब तक मिलते रहेंगे ?"

"यही प्रश्न मे तुमसे करना चाह रही थी अजय।"

"तो उसका यह तात्पर्य हुआ कि हम दोनों का एक ही प्रश्न है।"

"वह तो है ही!' जोसना बोली, "और हम दोनों के पास इस प्रश्न का उत्तर नहीं है।"

"हां, नहीं है।"

अजय बोला ही था कि जोसना बोली, "जिस प्रकार इस प्रश्न का उत्तर नहीं है कि जब संसार न था ये चांद और तारे न थे, सूर्य न था और ये नदी, पहाड़, समुद्र, जंगल आदि रेगिस्तान न थे तो क्या था ?"

"और यह प्रश्न भी तो कि जब कुछ न था तो ईश्वर कहां था ?" अजय बोला, "स्वयं ईश्वर कहां और कैसे आया ?" यह सोचकर भी तो मस्तिष्क चकराने लगता है।"

"हां।" जोसना बोली, "मेरा भी यही हाल है, मै भी प्रायः यही सोचा करती हूं और जब दिमाग चकराने लगता है तो तोबा-तोबा करके शान्त हो जाती हूं।'

"हां," अजय ने ताईद की और फिर थोड़ी देर तक वह अपने-

अपने विचारों में खोये गुमसुम उदास बैठे रहे कि जोसना बोली, "तुम अपने डैडो से कहो कि वह मेरे डैडो से बात करें।"

"उल्टी बात !" अजय ने महौल की जान को खुश करते हुये शोखी से कहा. "तुम तो जोसना उल्टी गंगा बहाने पर लगी हो। भला लड़के वाले भी बातें निकालते हैं।"

"प्रेम में तो बहती ही है उल्टी गंगा।" जोसना बोली, "यदि प्रेम की गंगा उल्टी न बहती होती तो प्रेम का इतना बड़ा नाम कैसे होता, संसार में। संसार में आश्चर्य ही तो प्रसिद्धि पाते हैं।"

"हां यह बात तो है।" अजय ने कहा, "तुम कहती तो ठीक हो लेकिन न जाने क्यों मैं अपने डैडी से डरता हूं। उनके सामने जाने में मैं डरता हूं।"

"फिर—यह बात।" अजय बेचैन होकर बोला, "लेकिन, खैर मैं कोई उपाय सोचता हूं।"

"यदि उपाय न सूझा ?"

"तो जान तो अपनी निकल ही सकती है।" अजय ने जवाब दिया, "आत्महत्या दूर कौन सी है।"

"अरे !" जोसना चौंक पड़ी, "बड़े बुजदिल हो जी।"

"वह तो हूँ।" यह मुझे स्वीकार है, अभी-अभी मैंने स्वीकार किया है कि मैं डरपोक हूँ। डैडी के आगे जबान खुलती ही नहीं, मैंने आज तक अपने डैडी से आंखें चार करके बात भी नहीं की।"

"लेकिन मेरे डैडी ऐसे नहीं है, मैं तो उनकी आंखों में समाकर बात करती हूं।" जोसना अपने डैडी का नाम लेते ही जैसे कि बेसुध हो गई, बोली, 'मैंने तुमसे कई बार इस बात को कहा है न, मेरे डैडी ने मेरी मां के मरने के बाद मुझे मां, बाप और ईश्वर का प्यार देकर पाला है और इतना बड़ा किया है, वह मेरे लिये मर-मर कर जीये हैं और जी-जी कर मरे।"

उसकी आंखों में आंसू आ गये। अवरुद्ध कंठ से बोली, "डैडी मेरे भगवान हैं। उन्होंने अपनी सारी उम्र का एक-एक हिस्सा मेरी परवरिश और खुशी के लिये न्योछावर कर दिया है. उनका एहसान तो मुझपर इतना बड़ा है कि मैं अपने सात जन्मों में भी उनके इन आभारों और उनके इस प्यार का एक हिस्सा भी उन्हें नहीं लौटा सकती।"

"तो फिर तुम अपने डैडी से अपने दिल की बात कह दो जोसना, मैं भी अपनी मां से कह दूंगा तुम्हारे डैडी बात निकालें मेरे डैडी को मां समझा-बुझा लेंगी और हम दोनों मरते-मरते बच जायेंगे।"

"लेकिन मै इतनी बड़ी बात उनसे कहूं कैसे ?"

"अच्छा," अजय बोला, "तुम स्वय अपने मुंह से न कहो मुझे विश्वास है कि वह स्वयं एक दिन तुम्हारे मन की बात जान लेंगे। फिर पूछने पर तुम सब कुछ बता देना।"

"हां, देखो।"

"लेकिन तुम अपने डैडी से साफ-साफ बता देना अवश्य।" अजय ने इसे समझाने की कोशिश की और वह बोली, "अभी तो एम० ए० में एक वर्ष शेष है मेरे डैडी को ख्याल है कि वह मेरे एम० ए० कर चुकने के बाद मेरी शादी की चिन्ता करेंगे। उस समय देखा जायेगा।"

"लेकिन क्या पता कि वह किसी जगह तुम्हारा रिश्ता तय कर चुके हों या तय कर दें तो ?"

"नहीं," जोसना बोली, "ऐसा नहीं है, यदि ऐसा होता तो डैडी मुझ से मेरी राय जरूर लेते !"

और फिर एकदम उठते हुये बोली, "अच्छा, अब चलो अजय हमें बहुत देर हो गई।"

"अभी इतनी देर तो नहीं हुई।"

"नहीं, देर हो गई है।" जोसना बेचैनी से बोली, "तुम्हारे प्रेम में अब बहुत सी बातें भूलने लगी हूँ।"

उसने बड़े दुःख के साथ कहा, "डैडी ने कहा था कि आज मैं घर शीघ्र ही आ जाऊँगा और मैं यह बात भूल ही गई कि डैडी ने घर शीघ्र आने को कहा है मैं उर्मिला के यहां जाने का बहाना बनाकर आज घर से निकली थी।"

"अच्छा।"

अजय इस तरह उठा जैसे कि वह किसी अपनी प्रेमी की अर्थी में शामिल होने जा रहा हो, वह भरी आवाज में बोला, "जाओ।"

वे दोनों चलने लगे, अजय की लम्बी, चौड़ी और बड़ी कार कुछ ही दूर पर सामने खड़ी थी।

जोसना बड़े ध्यान से अपनी मेज पर झुकी पढ़ रही थी कि दुर्गेश आ गया, वह बड़े प्यार से अपनी पुत्री के सिर पर हाथ रखकर बोला, "अब तुम पढ़ना बन्द करो बेटी, और जाकर सो जाओ।"

उसने अपनी पुत्री को हृदय में भर लेने वाली नजरों से देखा।

"रात के साढ़े ग्यारह बज गये हैं पुत्री।"

"आपने लिखना बन्द कर दिया है क्या डैडी !"

'नहीं, बेटी' दुर्गेश बोला, 'मुझे अभी छुट्टी कहां से मिल सकती है मेरी बेटी मै तो लिखना छोडकर तुझे सुलाने के लिये आया हूँ अभी तो मुझे बहुत लिखना है, उपन्यास खत्म करना है न, मैं तो अभी दो बजे रात तक लिखूंगा इससे पहले मुझे छुट्टी कहां !"

जोसना का जी भर आया, बड़े प्यार से बोली, "आप बहुत परिश्रम करते हैं डैडी। उसकी आंखों में आंसू छलकने लगे इतना श्रम न कीजिएगा।"

"परिश्रम न करूं तो बेटी काम कैसे चले, "प्यार से बोला, "अभी तो मुझे तेरी शादी करनी है, बहुत से रुपयों की आवश्यकता पड़ेगी बेटी।"

और अपनी शादी के नाम पर जोसना कुछ शरमा गई और बोली,

"अब तो भैया भी कमाने लगे हैं और अब तो आप बहुत थक भी गये हैं डैडी।"

वह दुःख से बोली, "अब तो आप बूढ़े नजर आने लगे डैडी।"

बूढ़ा तो मुझे तेरी मां ने मरकर बना दिया है बेटी, परिश्रम ने मुझे बूढ़ा नहीं किया और फिर बूढ़ा बनाया है इस देश की चिन्ता ने, पांच वर्ष स्वतन्त्रता के बीत जाने के बाद भी देश की स्थिति ज्यों की-त्यों है, अभी तक कुछ नहीं हो पाया जो जहां था वहीं है बेटी बरन इससे भी बुरी हालत में है। भ्रष्टाचार, चोरबाजारी, बेकारी और आगे बढ़ी है। हम आगे नहीं बढ़े। मंहगाई बढ़ी है, टैक्स बढ़े हैं, कमीनापन बढ़ा है और देश के सिर पर कर्जा बढ़ा है जो अमीर थे वह और भी अमीर हो गये और जो गरीब थे वह और भी गरीब हुये हैं बेटी।"

उसकी आंखों में आंसू आ गये और वह उन आंसुओं को पी जाने की कोशिश में अपनी बेटी को उसके पलंग तक लेकर आया और उसे बिलकुल बच्चों की तरह लिटाकर उसे चादर उढ़ा दी रोशनी बुझाकर सोने का नीला बल्ब जलाकर बोला, "अब तुम सो जाओ बेटी आराम से सो जाओ।"

फिर वह अपने लिखने की मेज पर आ गया।

दुर्गेशचन्द्र आज बहुत दुःखी था उसका दिल टूटा हुआ था और उदास था। ऐसा मालूम होता था कि वह अब रोया और अब रोया और उसके दिल की पुकार उसकी कलम से आज एक ऐसी चीज निकली थी जिससे वह बहुत उदास हो गया था। उसे लग रहा था कि अंधेरे के सिवाय उसके चारों ओर कुछ नहीं है। अंधेरा अंधेरा और केवल अंधेरा।

वह बड़ी बेचैनी की दशा में अपनी शकुन्त की तस्वीर उठाकर उससे बातें करने लगा, उसने बड़े दुःख के साथ उससे कहा, उसकी आवाज में बड़ा दर्द था, "शकुन्त मुझे क्षमा करना, आज मै तुम्हें ऐसी चीज सुनाने जा रहा हूं शायद तुम्हारी आत्मा को दुःख हो, लेकिन तुम जानती हो शकुन्त, ये तुम्हें अच्छी तरह मालूम है कि मैं तुमसे कभी कोई बात नही छुपाता फिर मैं इतनी बड़ी बात कैसे छुपा सकता हूं भला, तो, लो सुनो शकुन्त कि मैने लिखा है।

उसका कंठ रुक गया, उसने शकुन्त की तस्वीर को मेज पर अपने सामने रख दिया, "मैंने फिर कुछ शेर कहे हैं शकुन्त इसी अपने देश के विषय में, लो तुम भी सुनो इसे कवि सम्मेलन में पढ़ने से पहले मैं तुम्हें सुनाता हूं और अनुमान लगाओ कि स्वतन्त्रता के बाद भी हम कहां खड़े हैं।"

उसने शकुन्तला की तस्वीर को ध्यान से देखा, "लेकिन तुम ये बातें सुनकर बहुत अधिक दुःखी न होना शकुन्त, इसलिए कि आशा का पल्ला अभी भी मैने नहीं छोड़ा और यह इसलिए कि मुझे इसका विश्वास है कि एक-न-एक दिन अंधेरे के काले बादल अवश्य छट जायेंगे और प्रकाश का स्वागत हम कर सकेंगे। अमावस्या के बाद एक नवीन प्रकाश का चांद फिर से निकलता है।"

उसने भरे स्वर में दुख के साथ यथार्थता का वर्णन किया। उसने

शुरू किया—

इस धरती पर शायद भैया अब भी अपना राज नहीं है,
कल तो कल था कल हो शायद लेकिन भैया आज नहीं है।

अब भी जनता भूखी नंगी अब भी फुटपाथों पर डेरे,
अब भी मन को चैन नहीं है, हरदम रहती चिन्ता घेरे।

अब भी रोजी की फिकरों में बीते अपने सांझ सवेरे,
अब चिन्ता दर-दर चीखे पेट में हमरे नाज नहीं है। इस धरती पर···

इनका तो ये राज है बाबा पैसों में जो तगड़े हैं,
और गरीबों की किस्मत में ठोकर हैं और रगड़े हैं।

जब देखो तब हिन्दू-मुस्लिम रोज यहां झगड़े हैं,
कल तो हाकिम गैर यहां था लेकिन वह तो आज नहीं है। इस धरती···

रिश्वतखोरी चोर बाजारी, काले सारे धन्धे हैं,
कदम-कदम पर जाने सस्ती इस हवस के फन्दे हैं।

आखिर यह सब होता क्यूं ? खाते क्यूं सब गन्दे हैं,
अब तो हकूमत जमूरी है अब तो कोई ताज नहीं है। इस धरती पर···

महगाई-ही महगाई है पैसे का कुछ मोल नहीं है,
जिसको देखो डंडी मारे एक की सच्ची तोल नहीं है।

बच्चे बिलकें, दूध को तरसे कौन जो डावांडोल नहीं है,
जिसको देखो रोता देखो काम नहीं है काम नहीं है। इस धरती····

गेहूँ चावल मिर्च मसाला, दूध मलाई और मीठा,
जिसमें देखो उसमें मिलावट हाय चली यह कैसी हवा।

दाल हो या हो हल्दी, धनिया केसर हो या हो वह दवा,
कोई बता दो चीज हो ऐसी जिसमें मिलावट आज नहीं है। इस धरती

उसने अपने दिल का यह दर्द और घुटन आंसुओं के बीच खत्म किया और वह शकुन्त के चित्र को अपनी डबडबाई आंखों से देखकर बुड़बुड़ाया, उसने बड़े दुख से कहा, "तो शकुन्त यह है तुम्हारे और हमारे देश की हालत जिसकी स्वतन्त्रता और सम्पन्नता के लिए हमने प्रार्थना की थी। रो-रोकर ईश्वर से यह प्रार्थना की थी कि हमारा देश स्वतन्त्र हो फले, फूले और आगे बढ़े। आजाद तो हो गया हमारा देश धन्यवाद है लेकिन दशा यहां की यह है कि शकुन्त जो मैंने तुम्हें अभी सुनाई है और यह बड़े दुःख और शर्म की बात नहीं तो क्या है शकुन्त! समझ में नहीं आया कि आगे चलकर और क्या होगा। हमारे देश की दशा कभी सुधरेगी भी या नहीं। ईश्वर करे कि सुधर जाये।"

और फिर अपने देश की इस हालत पर उसका दिल डूबने लगा वह एक बार फिर सिसकियों और हिचकियों से रो रहा था।

जोसना ने अजय से पूछा, "तुमने अपनी मां से बात की थी"?

"अभी तो नहीं की।"

और जोसना जैसे कि चौंक पड़ी, "तुम बुद्धू हो।"

"हां", वह मुस्कराया, "हूं तो सही, फिर?"

"फिर ये कि, फिर—।"

"क्या मतलब!"

"मतलब यह है कि तुमने अभी तक मां से भी बात नहीं की, और मेरे डैडी अब मेरे ब्याह के विषय में सोचने भी लगे क्या पता कि उन्होंने

बातचीत भी शुरू कर रखी हो। तुम इसी तरह ढ़ील देते रहे तो मेरी शादी हो जायेगी, मै फुर से उड़ जाऊंगी तब फिर तुम टापते रह जाना।"

"अच्छा" अजय बोला, "तो क्या बात इतनी गम्भीर हो चुकी है?"

"होगी नहीं।"

"तो फिर मै अपनी मां से आज ही बात करूंगा।"

"तुम रोज आजकल करते हो।' जोसना बोली, "मैं सब समझती हूँ।"

"क्या समझती हो तुम?"

"यही कि तुम मुझसे प्यार बिलकुल नहीं करते हो।" जोसना भौं डालकर बोली, "मैं ही हूँ कि तुम पर…।"

और अजय एकदम जोसना की बात काटकर बोला, उसके ढंग में प्यार और बेचैनी थी "अरे! अरे!" वह जोसना के सामने हाथ जोड़कर बोला, "कम-से-कम मेरे विषय में तुम निर्णय करने में इतनी शीघ्रता से काम न लो, जोसना! नहीं तो मैं बे मौत मारा जाऊंगा और फिर तुम, मैं सच कहता हूं कि दुःख मे हाथ मलती रह जाओगी।"

"तो क्या तुम समझते हो कि तुम ही मरोगे, मैं न मरूंगी?"

"फिर तुम इतना शीघ्र निर्णय क्यों सुना देती हो!"

"निर्णय नहीं सुनाया मैंने" जोसना बोली, "बात मैंने तुम्हें बताई कि डैडी मेरी शादी की बात अब निकालने लगेहैं।" उसने अजय से कहा. "तुम्हें अधिक दुःख न हो इसलिए मैंने कहा था भैया का पत्र भी बम्बई से आया था। उन्होंने मेरे लिए कोई लड़का पसन्द किया है। वह डैडी से विचार विमर्श करना चाहते हैं।

"मैंने डैडी की मेज पर वह पत्र देख लिया था और वह पत्र पढ़कर

मेरा सिर चकराने लगा था।"

और यह कहते-कहते उसकी आंखों में आंसू आ गये। और अजय भी जो कि अब तक बड़ी सावधानी और शान्ति से बातें कर रहा था, एकदम घबरा गया। जोसना से यह सुनकर उसका भी सिर चकराने लगा। उसके होश उड़ गये और चीख पड़ा, "नहीं, जोसना ऐसा कभी न होने देना तुम, नहीं तो मैं आत्महत्या करके मर जाऊंगा। मैं तुम्हारे बिना तुम्हारी कसम जीवित नहीं रह सकता।"

उसकी आंखों में आंसू आ गये। वह रुंधे स्वर से बोला, "मैं भी जाकर अपनी मां से सब कुछ कहता हूं, अभी, इसी समय। तुम उधर अपने डैडी का ख्याल रखना कि वह कोई निर्णय न करने पाएं, नहीं तो मेरा हार्ट फेल हो जाएगा। मैं बेमौत मर जाऊंगा, मेरी जोशो।"

वह जोसना के कंधे से सिर टकराकर रो पड़ा और रोता ही रहा।

अजय ने अपनी मां सावित्री से बड़े प्यार से कहा, "एक बात कहूं मां !"

उसकी मां सावित्री ने अपने पुत्र को ध्यान से देखते हुये कहा, "यह आज एक बात कहने के लिये तुम्हें मुझसे पूछने की आवश्यकता कैसे पड़ी।" वह मुस्करा दी, "क्या बात है !"

"बात जरा गम्भीर है मां।"

"अच्छा !"

"हां," अजय बोला, "अभी तो आप से पूछ रहा हूं कि कहूं या न कहूं ?"

"अवश्य कहो", सावित्री बोली, "गम्भीर बात तो और भी शीघ्र कह डालो।"

"लेकिन बात सुनने से पहले एक बात सुन ले मां !"

"वह क्या ?"

अजय ने बड़ी शान्ति और पूर्ण निर्णय के ढंग पर कहा, "मेरी यह बात पूरी न हुई तो !"

और फिर स्वयं ही अपनी बात पूरी न करते हुये शीघ्र बोला, "मेरी यह बात आप लोगों को माननी ही पड़ेगी।"

Please see next page 129

दुर्गेश बड़ा दुखी था, वह अधिक परेशान था। अपनी मेज के ऊपर अपने दोनों हाथों के बीच सिर रखे बैठा था। उसने अपनी कुर्सी ज़रा सी पीछे की। अपना सिर उठाकर मेज पर रखी हुई तस्वीर को देखा—देखता रहा—देखता रहा—वह शकुन्तला के चित्र को एकटक देखे जा रहा था। उसके होंठ हिले। उसने उस तस्वीर को ध्यान से देखते हुये कहा, "तुम्हारी बेटी जोसना के लिये मेरे दिमाग में कई अच्छे-अच्छे लड़के हैं। तुम्हारे बेटे अजीत ने भी उसके लिये एक लड़का पसन्द किया है। उसने बम्बई से उस लड़के का चित्र भी भेजा है और उसके विषय में लिखा भी है, लेकिन जोसना के मन में कुछ और है। शकुन्त, मुझे उसके रवैये और ख्याल से वह मालूम हो गया है कि वह इन रिश्तों मे से किसी एक के भी हक में नहीं है। वह शायद अपने लिये अपने मन ही मन में किसी अन्य को चुन चुकी है। किसी अन्य को उसने शायद पसन्द कर लिया है।" उसकी आखों में आंसू छलक आये, "हमारी बेटी आज महीने से परेशान सी रहती है। उसके अनुमान से मुझे पता लगता है कि वह किसी बहुत बड़ी दिमागी परेशानी में फंसी हुई है। वह हंसती बोलती भी कम है, हर समय कुछ सोचती रहती है। खोई खोई सी रहती है, खाती पीती भी नहीं। पहले पढ़ने लिखने में वह इतनी खोई रहती थी कि खाने पीने और सोने की सुध भी न रहती थी। पर अब उसका मन पढ़ने में भी नहीं लगता है। वह पढ़ने अवश्य

जायेगा और इतिहास में मेरा नाम इस लिये आ जायेगा कि मैं इतने बड़े लेखक का दामाद था।"

"बेकार का तर्क तुम मुझसे न करो अजय।" सावित्री तंग आकर बोली, "मैं ऐसी बात तुम्हारे पिता के सामने कभी नहीं रख सकती जिसमें मेरी निन्दा हो। वह यह बात कभी नहीं मानेगें कि तुम्हारी शादी उस परिवार में हो जाय जो उनके पासंग भी नहीं है। गंगू तेली की बेटी राजा भोज के महल में ब्याह कर न ती कभी आई है और न ही आ सकती है।"

"वह आई हो या न आई हो मां," अजय का चेहरा लाल पड़ गया, "लेकिन अब वह राजा भोज के महल में ब्याह कर अवश्य आयेगी। और इस तरह वह न आ सकी और आप लोग अपनी व्यर्थ की हठ और जिद पर इस तरह अटल रहे तो मैं अपनी इच्छा से ब्याह करके सदैव के लिये आपके इस राजा भोज के महल से निकल जाऊंगा।"

और यह कहकर गुस्से से भरा हुआ अपनी मां के कमरे से निकल-कर कोठी से बाहर चला गया और सावित्री विचारों में खोकर बैठ गई। उसके हाथों के तोते उड़ चुके थे।

से बातें करने का मौका मिल जाने पर लोग फूले नहीं समाते।"

सावित्री जो कि अपने बेटे को ध्यान से देख रही थी, बड़ी असावधानी से उसकी बातों का असर लिये बिना बोली, "तुम यह कहो कि वह एक लेखक की बेटी है।"

सावित्री ने इस ढंग से कहा जैसे कि वह यह कह रही हो कि यह क्यों नहीं कहते कि वह एक भिखारी की बेटी है, जो कि दर दर भीख मांगता फिरता है। और उसके इस ढंग पर अजय चिढ़कर बोला, 'लेखक की बेटी को बहू बनाकर तो तुम्हें गर्व होना चाहिये मां, यह तुम्हारा सौभाग्य है कि वह इस घर की बहू बन रही है।"

"तुमने इस घर की बहू भी बना दिया।" सावित्री ताने में मुस्काई "बड़े नादान हो तुम जो आज तक यह भी न समझ सके कि सरस्वती और लक्ष्मी का मेल कभी नहीं हुआ। कला और माया में तो युगों का बैर चला आ रहा है।"

"यह सब बेकार की बातें हैं मां।" अजय क्रोध से बोला,' यह उस देश में होता है जहां लक्ष्मी की पूजा होती है। नहीं तो सरस्वती का स्थान लक्ष्मी से कहीं ऊंचा है। दौलत तो एक मूर्ख आदमी के पास भी हो सकती है। वेश्यायें और उनके दलाल बड़े धनी होते है, तो क्या यह ऊंची बात है? गर्व की बात है क्या?" वह बुरा सा मुंह बनाकर बोला, "और लक्ष्मी से तो मुझे इसलिये भी चिढ़ है कि मूर्ख और गधों से सम्बन्ध रिश्ता जोड़ती फिरती है। चोर, डाकू, बदमाश, सूदखोर आदि चोर बाजारी करने वालों के पास होती है वह। और सरस्वती, वह हमेशा उनके पास होती है जो मरने के बाद भी अमर हैं। जिनका नाम रहते संसार तक आदर्श, इज्जत के साथ लिया जाता रहेगा।" उसने कहा, "मेरा नाम भी कभी कभी इसलिये लिया

उसकी मां मुस्कराई, "बात बतायेगा भी कि पहले से ही ...।"

वह झट से बोल पड़ा, "मैं जोसना से शादी करूंगा मां !"

"जोसना !" उसकी मां आश्चर्य से बोली, "यह जोसना कौन है ?"

"आपकी होने वाली बहू है मां !"

अजय की बात में अटल निर्णय था। सावित्री ने पूछा, "लेकिन यह तो पता चले कि जोसना है कौन ! परिवार क्या है, हैसियत क्या है उसके बाप की ? हमारे जोड़ का परिवार है भी या नहीं ? नाम क्या है उसके बाप का, और उसका धन्धा क्या है ? किस ढंग का है आदि...।

अजय एकदम बात काटते हुये निकलते हुये बोला, "ब्याह मुझे लड़की से करना है या उसके बाप से, या उसकी हैसियत या धन्धे से।'

वह नाक-भौं सिकोड़कर बोला, 'बस लड़की का नाम मैंने बता दिया तुम्हें। और यह भी बता दूं कि परिवार सज्जन और ऊंचा है।"

इस पर सवित्री तुरन्त बोली, "इस तरह तो शादी होती नहीं है जिस तरह कि तू चाह रहा है। यह भी तो देखा जाता है कि उनकी हैसियत भी हमसे मिलती है कि नहीं, धन्धा और रुपये-पैसे की समानता भी देखी जाती है !',

इसपर अजय नाराज होकर बोला, "तुम कुछ पढ़ी लिखी हो ? साहित्य से कुछ प्रेम है तुम्हें मां, यदि है तो चोंक पड़ो मां कि उसके बाप का नाम दुर्गेशचन्द्र है। दुर्गेशचन्द देश का जाना, माना और पहचाना हुआ बहुत बड़ा लेखक और कवि है, जिसके नाम की पूरे देश में पूजा होती है। जिसके नाम और कविताओं को महलों से लेकर कुटियों तक के रहने वाले बड़े अरमान और चाव के साथ पढ़ते हैं। जिसकी एक झलक के लिये बुद्धिमान व्याकुल रहते हैं और जिससे केवल

बैठती है, और मैं देखा करता हूँ कि पढ़ने में अपना ध्यान लगाने की चेष्टा भी करती है पर पढ़ नहीं पाती। जैसे कि उसका मन उसका उसके काबू से बाहर चला गया हो।"

वह कुछ देर रुककर बोला, "वह अवश्य किसी से प्रेम करने लगी है, वह बात शत-प्रतिशत सत्य है और यह बात मैं अपने अनुभव से कह सकता हूँ लेकिन मैं यह बातें इससे कैसे करूं? किस तरह यह पूछूं कि वह किससे प्रेम करने लगी है।"

वह भर्राई आवाज में बोला, "आखिर मै उसका पिता हूँ और वह मेरी जवान पुत्री है। तुम ही बताओ कि मैं यह बातें उससे कैसे पूछूं?"

फिर एकदम खुश होकर बोला, "अरे! यह उपाय शायद तुम्हीं ने मेरे दिमाग में डाला है, यह ठीक है। ठीक सलाह तुमने मुझे दी है। मैं भी कैसा मूर्ख हूँ जो इतनी सी बात भी मैं न सोच पा रहा था। मैं अभी पत्र डालकर तुम्हारी बहू को बम्बई से बुलाता हूँ। वह जोसना की भाभी के अतिरिक्त उसकी सखी भी तो है। वह उसके दिल की बात उससे पूछकर मुझे बता देगी।"

और फिर उसने शकुन्त से कहा, "तुम कोई चिन्ता न करो। मेरी शकुन्त! मै तुम्हारी पुत्री का मन जरा भी मैला न होने दूंगा। उसकी खुशी ही तो मेरा जीवन है। वह जहा कहेगी, वहीं उसकी शादी कर दूंगा। चाहे उसके लिये मुझे आकाश के तारे ही क्यों न तोड़ने पड़ें। मैं अपनी बेटी के मन की शांति के लिये अपने घुटने टेक दूंगा। मैं अपना जीवन देकर भी उसके अरमानों का सौदा कर लूंगा। तुम कोई चिंता न करो तुम। यदि तुम नहीं हो क्या, मैं तो अभी जीवित हूँ। तुम्हारे बच्चों के लिये फिर तुम्हें काहे की चिंता।"

फिर उसने उसी समय अपने बेटे अजीत को 'तार' दिया कि एक आवश्यक कार्य के लिये अरुणी को दिल्ली भेज दो

सेठ लक्ष्मीकान्त अजय के करोड़पति पिता ने अपनी स्त्री सावित्री को ध्यान से देखते हुये आश्चर्य से कहा, "यह क्या कह रही हो तुम ?"

"मैं वही कह रही हूं जो सत्य है और जो तुम्हारे पुत्र ने मुझसे कहा है।"

क्या कहता है कि यदि वह अपनी शादी करेगा तो उस लेखक की पुत्री से करेगा। नहीं तो आत्महत्या आदि कर लेगा। हमें जूते लगाकर निकल जायेगा।"

"जी हां।"

"अच्छा।"

फिर उसकी पत्नी सावित्री उसे देर तक समझाती रही और उसे इस बात पर उकसाती रही कि यह अजय की यह बात मान ले और जोसना के साथ शादी कर दे।

उसने सब कुछ सुनकर केवल इतना ही कहा, "अच्छा मैं सोचता हूं।"

सावित्री बोली, "लेकिन यह बात जरा टेढ़ी हो गई है। ध्यान रखियेगा यदि शादी न हुई तो···।"

और उधर दुर्गेशचन्द्र ने अपनी बहू अरुणी से सारी बातें सुन लेने के बाद एक हौसले से कहा, "न कैसे होगा यह ब्याह, मेरी बेटी से कह

देना बहू कि उसकी खुशी और शान्ति के लिये मैं अपने जीवन की बाजी लगा दूंगा। उसका मनचाहा रिश्ता उसे अवश्य मिलेगा। कह देना मेरी बेटी से कि अगर ईश्वर ने चाहा तो उसके बाप के हौसलों के आगे हर कठिनाई सरल हो जायेगी।"

अरुणी ने जोसना के आते ही उससे बातें कीं, "मिठाई खिलाओ जोसना।"

और जोसना अपने दिमाग में कई बातें दोहराते हुये बोली, "किस बात की मिठाई भाभी ?"

"एक बहुत बड़ी खुशी की बात की मिठाई जोसना।"

"क्या बात है वह ?"

अरुणी ने बड़े प्रेम से जोसना को गले लगा लिया। बोली, "मैंने तुम्हारे मन की बात पिता जी से की थी।"

"अरे !" जोसना हैरान हो गई, "तुमने यह सारी बातें डैडी से कह दीं !"

"मूर्ख !" अरुणी ने जोसना कि गाल पर प्यार की चपत लगाई, "पिताजी तेरी ओर से असावधान थोड़े ही थ। तेरे मन का भेद पाने के लिये ही तो उन्होंने मुझे बम्बई से बुलवाया था।"

यह सुनकर जोसना की आंखें भर आई। वह सोच रही थी, "मेरे डैडी संसार की हर बेटी के पिता से बहुत ऊंचे हैं। जितना प्यार वह मुझसे करते हैं, संसार का कोई पिता इतना प्यार अपनी बेटी से न करता होगा।"

वह सोच रही थीं कि अरुणी ने उसे धीरे से झकझोरा, "अब तुम क्या सोच रही हो ! पिता जी ने कहा है कि तुम बेटी से कह दो बहू

कि उसका मनचाहा रिश्ता उसे अवश्य मिलेगा। मैं अपनी बेटी की खुशी के लिये अपने जीवन का बलिदान दे दूंगा।'

"मेरे डैडी।' जोसना अत्यन्त हर्ष से अपनी भाभी से लिपट गई। वह भर्राये स्वर में बोली, काश! मैं अपने डैडी पर सत्तर हजार बार बलिदान हो सकती।"

उसके प्यार भरे आंसू उसकी भाभी के कन्धे को गीला कर रहे थे।

सेठ लक्ष्मीकान्त ने दुर्गेश को देखकर बड़े ठहरे अन्दाज में कहा, "तो आप हैं दुर्गेशजी। देश के महान लेखक !"

"जी !" दुर्गेश ने सम्मान, शर्म और आवश्यकता को छिपाते हुये कहा, "लेखक अवश्य हूं, पर महान-वहान की बात तो ईश्वर जाने।"

"हूं", लक्ष्मीकान्त के ढंग में गर्व और छिपा क्रोध था, "कहिये कैसे आना हुआ ?"

उसके ढंग में व्यंग भी था, 'किसी धर्मशाला या अनाथाश्रम के लिये चन्दा-वन्दा लेना है क्या !"

दुर्गेशचन्द्र उसकी इन बदतमीजियों को समझ रहा था। वह अनुभव कर रहा था उसकी दुखद बातों को, लेकिन केवल अपनी पुत्री की खुशी के लिये वह आत्म-सम्मानिय मनुष्य इन बातों को सहन कर रहा था और मन-ही-मन कह रहा था कि मैं भी अपनी बेटी की मुस्कराहटों को जीवित रखने के लिये इस स्थान पर आकर अपनी सारी सहन-शक्ति को आजमाकर रहूंगा चाहे सहने की सीमा भी समाप्त हो जाये। और मेरा दिल ही क्यों न फट जाये, अपनी पुत्री की खुशी के लिये अपना हृदय छलनी कराकर ही रहूंगा।

इसलिये वह उसकी इन बदतमीजियों को अपने-आप सहन करते हुये कोमलता से बोला, 'चन्दा नही लेना है सेठजी, चन्दा मांगना तो कम अनादर की बात है, मैं तो आपसे भीख मांगने आया हूं और इस आशा से आया हूं कि भीख मैं आपके दर से लेकर ही जीवित

जाऊंगा।"

"अच्छा !" लक्ष्मीकान्त का यह शब्द 'अच्छा' दुर्गेश का मजाक बना रहा था, "मांगिये भीख।"

"देंगे आप !"

"भिखारी देने या न देने का प्रश्न नहीं करते, भीख मांगते हैं वे।"

दुर्गेश हर चुभने वाली बातें सहन करते हुये बड़े निश्चय से बोला, "मुझे रिश्ते की भीख चाहिये, रास्ते की नहीं सेठजी ! मैं अपनी बेटी जोत्सना के लिये आपके बेटे अजयकुमार का रिश्ता मांगने आया हूं।"

"अपनी हैसियत की जांच किये बिना आपने भीख मांगी है लेखक जी" लक्ष्मीकान्त ने घृणा के साथ उत्तर दिया, "यह आपके कोई उपन्यास या कविता की बात नहीं कि जो चाहे लिखते जाइये, या जो प्लान मन में आये वह रच लीजिये। यह स्वप्नों का संसार नहीं लेखक जी, यह जीता-जागता संसार है। स्थिति देखकर प्लाट जोड़े जाते हैं। समझ गए आप !"

"यह हैसियत न देखकर सदा ही से प्लान जोडने के आदी हैं।" पीछे से आवाज आई, "यह हमेशा ही से जिस पूंजीवादी समाज के विरुद्ध विष उगलते आए हैं उसी से रिश्ते जोड़ने की नित तरकीबें सोचा करते हैं। बड़े तिकड़मी लेखक हैं यह।"

दुर्गेश ने हैरत और अचम्भे से ओमप्रकाश भल्ला, की बहन के पति को देखा, "आप !"

"जी हां।" ओमप्रकाश ने 'जी हां' इस ढंग से कहा जैसे कि उसने चोरी करते हुए इंस्पेक्टर पुलिस बनकर दुर्गेश को पकड़ लिया हो। वह घृणा से बोला, "तुम घूम-फिरकर एक ही परिवार को तकते चले आ रहे हो दुर्गेश ! यह लक्ष्मीकान्त मेरी मौसी के लड़के हैं और

अजयकुमार मेरा भतीजा, जिससे तुम अपनी बेटी का रिश्ता मांगने आए हो, अब बोलो !"

दुर्गेश, ओमप्रकाश से शेर की भांति आंखें चार करके बोला, "अब क्या नई बात हो गई है कि अब मेरे बोलने में अन्तर आ जाएगा। मैं अब भी वही कहूंगा जो कह रहा था।"

उसने ठहरे हुए अनुमान में दुःख से कहा, "आपके परिवार को मैंने नहीं ताका यदि सच पूछते हो तो आपने मेरे परिवार को ताका है, आप मेरे बेकार के शत्रु बन गये हैं यदि अपनी पसन्द की शादी शकुन्तला ने मुझ से कर ली थी तो कौन-सा अनर्थ हो गया था कि तुम लोगों ने मौत की दुनिया में पहुंचाकर उसे दम लिया, क्या हक पहुंचता था, शकुन्तला के पिता को कि वह उसे सम्पत्ति से विरक्त करके चले गये। वह सम्पत्ति उनकी अपनी कमाई की नहीं वरन उनके बाप-दादा की कमाई की थी और वह शकुन्त को पृथक् नहीं कर सकते थे। कानूनी अधिकार शकुन्तला का ज्यों-का-त्यों बना हुआ था। यह हमारी सज्जनता थी और हमारी सम्पत्ति की ओर से उपेक्षा थी कि हमने अधिकार का दावा नहीं किया वरन आज इस इतनी बड़ी सम्पत्ति के मालिक आप अकेले न होते अपितु आपकी मरी हुई पत्नी के साथ-ही-साथ शकुन्तला भी उस धन की मालिक होती इसलिये कि वह आपकी पत्नी कलावती की जुड़वा बहिन थी और भाई उनके कोई न था और न बहिन थी।"

उसने बड़े दुःख से कहा, "हमने सज्जनता को नहीं छोड़ा त्यागा, सम्पत्ति जैसी मामूली आनी-जानी वस्तु के लिये शकुन्तला ने अपने बाप पर कोई दावा न किया और न उस गरीब ने अपनी बहिन से ही कोई मांग की उस सम्पत्ति की ओर वह केवल पच्चीस हजार की रकम मांगने पर मौत की गोद में चली गई और आपकी धर्मपत्नी को

उस पर भी शर्म न आई और आपने केवल मेरे बच्चों के पेट पर लात मारने के लिये 'नवयुग' खरीदकर मुझे नौकरी से निकाल दिया।"

वह क्रोध में भर गया, "बड़े बेशर्म और कमीने हैं आप और आप की धर्मपत्नी वह कलावती जिसे अपनी बहिन के बच्चों और उसके हक का ख्याल भी कभी न आया यदि मैं चाहूँ या मेरे बच्चे चाहें तो वह आज भी अपने हक का दावा करके आपकी पत्नी से उगलवा सकते हैं। इसलिये कि वे कलावती की बहिन शकुन्तला के बच्चे हैं और उचित उत्तराधिकारी हैं।"

क्रोध और घृणा से बोलते-बोलते दुर्गेश का सांस फूल गया। वह कमीना 'भल्ला' अपना सा मुंह लेकर रह गया। उसके होश उड़ गये और वह जो कि शेर की खाल ओढ़कर दुर्गेश जैसे महान और निडर इन्सान पर झपटा था ढीचूं-ढीचूं करने लगा और सेठ लक्ष्मीकान्त भी अपनी सारी बातें भूल गया ओमप्रकाश अपनी पूंछ दबाकर वहां से भाग खड़ा हुआ।

लेकिन चूंकि वह ज़लील किस्म का लालची पूंजीपति था और उसने अपने बेटे अजयकुमार के लिये अपने ही जैसे एक करोड़ पति सेठ की पुत्री का रिश्ता तय कर रखा था जहां से उसे दहेज के अतिरिक्त एक लाख रुपया नकद मिलने वाला था वह बड़ी ढिठाई से बोला, "अच्छा खैर आप इन बातों को छोड़िये दुर्गेश जी यह आपका अपना विषय है और आप दोनों जानिये मुझे इसमें क्या लेना देना, आप तो मुझसे बातें कीजिये।"

दुर्गेश ने अपने दुःख और क्रोध पर काबू पाते हुये कहा, "प्रार्थना तो की है मैंने कि आपके बेटे का रिश्ता मांगने आया हूं।"

'दाम चुका सकेंगे आप?"

यह सुनकर दुर्गेश का मुंह पीला पड गया कि वह समझता था कि इतना बड़ा धनी अपने बेटे की रिस्ते की क्या कीमत मांग सकता

है ? इस प्रका वह नम्रता से बोला,"भीख की बात करने वाले यदि खरीद सकते होते तो वे भीख की बात कभी न करते सेठ जी।"

"तो फिर जाइये दुर्गेश जी,"लक्ष्मीकान्त बडी निर्दयता से बोला, "भीख में चन्द टके तो मिल सकते है लेकिन दामाद नहीं मिलते, मै मजबूर हूँ।"

दुर्गेश जी कडा करके बोला ?

"एक जगह से दहेज के अलावा लाख नकद मिल रहा है।"

"एक लाख ! दहेज के अतिरिक्त !" दुर्गेश को चक्कर आ गया। धीरज रखते हुये बोला,"इस देश के लेखकों और कवियों ने तो एक लाख नकदी का स्वप्न भी न देखा होगा सेठ जी, उनके स्वप्नों में तो तो एक लाख गोटियां भी न आती होंगी।"

और इधर लक्ष्मीकान्त ने दिल में सोचा, उसका नालायक बेटा यह कह चुका है कि वह जोसना से ही शादी करेगा और मां बाप न भी राजी हुये तो वह स्वयं कर लेगा और फिर उसने शकुन्तला की बात भी सोची. उसने लडकी होकर इतना कदम उठा लिया था तो उसका बेटा अजय तो लडका है। इसलिये वह दिल ही दिल में सारे बही खाते खोलकर हिसाब किताब, सूद दर सूद, लाभ-हानि और मूल का हिसाब लगाकर बोला."तो आप केवल पचास हजार दीजियेगा।" वह व्यंग्य से मुस्कराया,"और यह केवल इसलिये कि आप कवि और लेखक हैं।"

"कुछ और छूट दे दीजिये सेठ जी।"

दुर्गेशचन्द्र जैसे कि फांसी के तख्ते पर खड़ा हुआ बोल रहा था, लक्ष्मीकान्त बड़ी सफाई और रूखेपन से बोला,"अब और क्या छूट चाहते हो कवि महाराज, लाख के पचास हजार तो कर दिये। आधे का घाटा सहन करना क्या कोई मामूली बात है ?" उसने दुर्गेश को

Library Sri Pratap College,
Srinagar.

कहा, "बस इससे कम धेला भी न लूंगा।"

"समझ लीजिए हां।"

"अच्छा," दुर्गेश बोला, "मुझे एक सप्ताह का अवसर दीजिए।"

"अवश्य आइए कभी महाराज लेकिन यह सोचकर आइए कि इससे कम धेला भी न होगा और हां एक सप्ताह के अन्दर ही तय हो जाना चाहिए नहीं तो, मैं उस लाख वाली आसामी से बात कर लूंगा।"

"बहुत अच्छा सेठ जी।"

और दुर्गेश अपनी पुत्री की चाहत और खुशी को किसी-न-किसी तरह पूरा कर देने का इरादा लेकर वहां से वापस लौटा। उसकी आंखों के सामने साठ हजार के नोट नाच रहे थे। पचास हजार नकद की बात थी और कम-से-कम दस हजार में दहेज और दूसरे अन्य खर्च।"

वह बहुत अधिक चिंतित उदास और दुखी था उसको यह खल रहा था कि इतनी बड़ी रकम जो कि उसके लिए असम्भव थी, प्रबन्ध कर सकेगा तो क्या होगा फिर? उसकी बेटी के इरादे और खुशियां कैसे पूरी हो सकेंगी और उसे अपना मुंह कैसे दिखा सकेगा।

वह इस प्रकार की उलझन में घर पहुंचा। उसकी बेटी घर पर ही थी उसपर नजर पड़ते ही उसका मन तैर गया। उसके हृदय से एक ठंडी आह खिंचकर बाहर आ गई, वह सीधा कमरे में आया और उसके पीछे उसकी बहू भी कमरे में आ गई उसने पूछा, "कोई बात बनी पिता जी।"

उसने अपनी फटी आंखों से अरुसी को देखा और इस विश्वास से बोला, "तुम मेरी बेटी से कह दो कि उसकी खुशी ईश्वर ने चाहा तो पूरी होगी वह कोई चिन्ता न करे।"

उसकी बहू खुश खुश कमरे से चली गई और उसने बड़ी हसरत से शकुन्तला की तस्वीर पर दृष्टि जमा दी, एक ठंडी आह भरकर बुड़बड़ाया, "मेरी बड़ी परीक्षा का समय आ गया है, हमारी बेटी के स्वपनों का मूल्य साठ हजार है और इतनी रकम तुम्हारे दुर्गेश ने कभी स्वप्न में भी नहीं देखी।" उसने बड़ी बेकशी से कहा, "ये साठ हजार कहां से लाऊंगा शकुन्त ?"

फिर उस इतनी बड़ी राशी के लिये वह चार दिन तक परेशान रहा उसने कई जगह बात की और हर तरफ से असन्तोष मिला। उस के मित्रों ने उसका मजाक तक उड़ाया कि वह अपनी बेटी की खुशी आखिर इतने महंगे दामों पर खरीदने की सोच ही क्यों रहा है, उसकी मूर्खता नहीं तो और क्या है ?"

"उसके मन की लगी हुई को कोई क्या समझ सकता था ? उसके इरादों का हर जगह मजाक बनाया गया और एक जगह उसे आशा की एक हलकी सी किरण दिखाई दी। वह अपने प्रकाशक के दफ्तर से निकल रहा था कि एक मनुष्य ने उससे कहा, "मैं आपकी बहुत इज्जत करता हूं दुर्गेशजी आपके साहित्य का मैं बहुत प्रशंसक हूं मुझे आपके प्रकाशक के मुख से आपकी उलझनों के विषय में सब कुछ मालूम हो गया है। मैंने आपकी परेशानी का हल ढूंढ लिया है आप मेरे साथ आईये।"

यह सुनते ही दुर्गेश के दिल की धड़कनें तीव्र हो गयीं उसने उस मनुष्य को ईश्वर का अवतार समझकर देखा, उसे ऐसा लगा जैसे कि स्वयं भगवान इन्सान का रूप धारण करके उसकी सहायता को आ गया हो। वह खुशी से हकलाते हुये बोला, "मैं आपका बड़ा आभारी हूं भाई। मैं जीवन भर के लिये आपके हाथों बिक जाऊंगा मेरी खाल के जूते बनाकर भी आप पहन सकते हैं।"

उसके आगे वह बहुत कुछ कहना चाह रहा था पर उसे शब्द नहीं मिल रहे थे। व्यक्ति बोला "आइये मेरे साथ।" और दुर्गेश को अपने साथ अपनी शानदार गाड़ी पर बिठाकर अपनी कोठी पर ले आया और ड्राइंग रूम में बैठकर तसल्ली से बातें की।

उस मनुष्य ने सबसे पहले दुर्गेश से अपना परिचय कराया।

"मेरा ना॰ ण कुमार है दुर्गेश जी।"

दुर्गेश घिघियाकर बोला, "आपका नाम ही कृष्णकुमार नहीं वरन सचमुच के कृष्ण हैं जो दुखियों के दुःख हर लिया करते थे।"

"यह तो आपकी महानता है दुर्गेशजी।" उसने नम्रता पूर्वक कहा, "हां तो आपको कितने रुपये की आवश्यकता है दुर्गेशजी?"

"एक बहुत बड़े काम के लिए मुझे साठ हजार की जरूरत है कृष्णकुमार जी।"

"मैं आपको पचत्तर हजार देता हूं।"

दुर्गेश हैरान, परेशान होकर, हकलाने लगा, "आप जो मांगियेगा बदले में मैं दूंगा।"

"उसके बदले में मुझे आपकी आवश्यकता है दुर्गेशजी।

वह न समझते हुये बोला, "मै समझा नहीं कृष्णकुमार जी, आप स्पष्ट कहिये।'

कृष्णकुमार जी ने स्पष्ट किया, "आप आज से जो भी लिखेंगे वह आपके नाम से नहीं मेरे नाम से छपेगा, दुर्गेशचन्द्र की जगह कृष्णकुमार जन्म लेगा।

"जी", दुर्गेश ने अपनी फटी आंखों से कृष्णकुमार को देखा ही था कि वह बोला, "मैं आपको पचहत्तर हजार भी तो दे रहा हूँ केवल आपके काम के साथ-साथ अपने नाम के लिये। आपका उपन्यास, कहानी शायरी और आपकी कवितायें मेरी होंगी और वर्ष में कम-से-कम तीन उपन्यास, एक दर्जन कहानियां और जितनी भी नज्में, गजलें और कवितायें लिखेंगे वह मेरे लिये। मस्तिष्क आपका और नाम मेरा होगा। और यह बात हमारे बीच तय हो गई कि इस भेद का रहस्य आप मरते दम तक नहीं खोलेंगे। यहां तक की अपनी आत्मा और अपने दिल से भी नहीं।"

उसने बड़ी ढिठाई से दुर्गेश की आंखों में आंखें डालकर कहा, "और उसमें मेरा साहस तो देखिये कि मैं कितना बड़ा रिस्क ले रहा हूँ जीवन और मरण का क्या भरोसा, क्या पता कि आप कल ही मर जायें और मेरा नाम अधूरा रह जाये तो आप यूं समझिये कि मैं अपने नाम के लिये एक जुआ खेल रहा हूँ, दाव पर लगा रहा हूँ ये पचहत्तर हजार।"

उसने उत्तर मांगा, "बोलिए स्वीकार है ?"

दुर्गेश ने अपनी बेटी के लिये अपने नाम का बलिदान दिया। दुर्गेश जो कि एक लेखक कवि, उपन्यासकार था उसका गला दुर्गेश ने अपनी बेटी की खुशी के लिए दबा दिया। उसने हमेशा के लिए उसे मार डाला—बाप, दुर्गेश ने बहुत बड़े कलाकार, दुर्गेश को जीवित ही मार डाला और कहा, "मुझे स्वीकार है भैया ! आज से यूं समझ लीजिए कि दुर्गेश लेखक, कवि और शायर था मर गया है और अब उसकी जगह कृष्णकुमार ने प्राप्त कर ली है।'

वह दुर्गेशचन्द्र कलाकार के हृदय पर स्वार्थ का पहाड़ रख कर

बोला, "लाइए पछत्तर हजार रुपए।"

कृष्णकुमार ने अपनी ब्लेक की राशि से एक छोटा-सा कोना खाली कर दिया। वह मुस्करा रहा था, वह बड़बड़ाया, "कौन कहता है कि शिक्षा धन से ऊंची है। आज इस धन के बल पर मैंने शिक्षा और कला को खरीद लिया है। यही वह धन है जो एक कवि और लेखक को जिन्दा ही दबाकर उसकी जगह मुझे लेखक और कवि बना रहा है।"

वह जोर से कहकहा लगा रहा था और उसकी हंसी से दीवार तक हिल रही थी।

"लेखक और कवि दुर्गेश नहीं वरन अब केवल दुर्गेश जो कि साधारण एक बेटी का बाप था सेठ लक्ष्मीकान्त से कह रहा था, "ये लीजिए पचास हजार रुपए सेठजी।"

किसी के पचास हजार के ब्लेक के कमाए हुए नोटों का ढेर श्री लक्ष्मीकान्त के सामने रखते हुए कहा, "यह है आपके काले धन में वृद्धि। अब लक्ष्मी की मूर्ति निकलवाइए और मुझे शादी की तारीख बताइए।"

सेठ लक्ष्मीकान्त ने पचास हजार के नोटों को देखते हुए कहा, "पहली शर्त तो पूरी हो गई और बस दूसरी शर्त और पूरी कर देते तो आपकी बेटी उस घर की बहू बनकर आपके घर में आ जाती।"

"दूसरी शर्त," दुर्गेशचंद्र आश्चर्य से बोला, "दूसरी शर्त आपकी क्या थी?"

"थी नहीं," लक्ष्मीकान्त निर्दयता से बोला, "बल्कि अब पैदा हुई।"

"क्या है वह आपकी दूसरी शर्त?" वह जब्त करते हुए बोला, "वह भी बता दीजिए कसम है पैदा करनेवाले की मैं वह शर्त भी मान

लूंगा बगैर सुने मुझे आपकी दूसरी शर्त स्वीकार है।"

"पहले सुन लीजिए कविजी,' लक्ष्मीकान्त कमीनगी की सीमा को पार कर बोला, "इसलिए कि लेखक और कवियों का हृदय कोमल होता है वे बहुत भावुक होते हैं न, कहीं आप सहन न कर पायें तो?"

दुर्गेश ने लक्ष्मीकान्त को देखा और बड़े ठहरे अन्दाज में कहा, "कलाकारों के दिल में सहनशक्ति बहुत होती है वे हिमालय पर्वत जैसा दुःख भी सहन कर लेते हैं आप मेरे दुःखों की परवाह न करके शर्त बता ही डालिए।"

शादी के बाद आप अपनी बेटी से कभी नहीं मिल पायेंगे और जीवन भर नहीं।"

यह दयनीय शर्त सुनकर दुर्गेश का मन शीशे की भांति चूर हो गया बड़े जोर का घूंसा दिल पर पड़ा। उसे लगा जैसे कि उसके दिमाग में कई ऐटमबम एकसाथ फट पड़े हों और लक्ष्मीकान्त ने बड़ी निर्दयता से उसकी दोनों आंखें निकालकर उसके हाथों पर रख दी हों जैसे कि उसने उसका हृदय नोच डाला हो।

लेकिन वह सहन करते हुये साहस से बोला, "मुझे स्वीकार है।"

"फिर बधाई हो दुर्गेशजी। मैं आज ही शाम पण्डितजी महाराज को बुलवाकर लग्न की तिथि निकलवाता हूं।" लक्ष्मीकान्त ने कहा, "आप शाम के पांच बजे अवश्य आइएगा।"

"अच्छा, बहुत-बहुत धन्यवाद।"

फिर दुर्गेश बहुत खुश लेकिन बहके कदमों के साथ वहां से चला आया वह रास्ते भर रोता रहा और सोचता रहा कि लक्ष्मीकान्त ने यह दयनीय शर्त बेटी से न मिलने की क्यों लगाई है?

और लक्ष्मीकान्त ने यह शर्त इसलिए लगाई थी कि इस शर्त में वह कमीना 'भल्ला' भी शामिल था। उसका ख्याल था कि यदि दुर्गेश का यहा आना-जाना हो गया या उसकी बेटी वहीं जा-जाकर मिलती रही तो दुर्गेश के मन में अपनी स्व० पत्नी के हक का विचार आ जाए।

और वह न्यायालय में दावा करके अपने बच्चों का हक उससे छीन ले जो कि वह जब्त किए बैठा है।

और उधर लक्ष्मीकान्त ने कुछ और ही सोचकर मांगा था उसका विचार था कि शादी के बाद वह अपनी बहू जोसना की ओर से उसके हक का दावा न्यायालय में पेश करा देगा और इस भांति वह इस धन पर अधिकार पा लेगा। जो कि उसका भाई ओमप्रकाश अवैधानिक रूप से दबाए बैठा है और दुर्गेश का मिलना जुलना होता रहा तो वह इस दावे का विरोध करेगा। और अपनी बेटी को यह दावा करने की कभी अनुमति नहीं देगा।

वह समझ चुका था कि दुर्गेश मूर्ख मनुष्य है, सीधा है और सज्जन है वह ऐसा कभी न होने देगा वरन् यह अब तक यह दावा कर न देता, दावा करके इतनी बड़ी सम्पत्ति का मालिक न बन जाता, इसलिए उसने यह शर्त लगाई थी।

दो धनिकों की धन की भूख ने इस सबसे बड़ी दुखमयी शर्त को जन्म दिया था और यह चालाक धनिकों की सम्पत्ति के लिये दोनों 'मोर्चा' तैयार कर रहे हैं। एक सम्पत्ति को हाथ से न जाने देने की सोच रहा था और एक इसी से धन छीन लेने के विचार में था यद्यपि वे दोनों धनिक थे और एक-दूसरे के मौसेरे भाई भी थे लेकिन धन जो बीच में था, जो किसी का मित्र तथा प्यारा नहीं होता।

दुर्गेश ने घर में आते ही बेचैनी से अपनी पुत्री को हृदय से लगा लिया। वह पागल की भांति हिचकियों और चीखों से रोते हुए कठिनाई से यह बोल सका, "बधाई हो मेरी बेटी तुझे यह नया जीवन, मै ...मैने कर्तव्य से मुक्त हो गया हूँ मैंने तेरी शादी अजयकुमार से तय कर दी है उसके पिता लक्ष्मीकान्त की हर शर्त मैने पूरी कर दी है।

वह पागलों की भांति जोसना का सिर चूम रहा था और उसके सिर को गोद में भींचे ले रहा था और फिर वह रोते-रोते बेहोश हो गया।

जोसना बड़ी धूम-धाम से अपने बाप के घर से अपनी ससुराल आ गई थी। दुर्गेश ने पचास हजार नकद के अलावा इतना शानदार दहेज दिया था कि देखने वाले हैरान रह गए। उसने बाकी के पच्चीस हजार रुपये भी खर्च कर दिए थे। जब जोसना विदा हुई और वह उसके बाद अन्तिम बार मिलने आई थी तो दुर्गेश इतना रोया था और तड़पा था कि देखने वालों के हृदय छलनी हो गए और सब की आंखें भीग गई।

किसी को क्या पता था कि अपनी बेटी को चिपटाकर ऐसे क्यों रो रहा है? उसके मन की बात केवल मन में ही थी। इसके सिवाय जोसना के ससुर की ये दूसरी शर्त कि वह जोसना से इसके बाद कभी न मिलेगा किसी को पता न थी यहां तक कि स्वयं जोसना को भी नहीं।

वह तो जैसे जीवन में ही जोसना के लिए मर गया था और जोसना उसके लिए मर गई थी और मरने का सब्र किसी-न-किसी तरह आ ही जाता है लेकिन जीवन में एक-दूसरे के लिए मर जाने का सब्र किसी को नहीं आ सकता फिर दुर्गेश की वह हालत क्यों न होती?

अपनी बेटी की इस खुशी के लिए तो गरीब ने दो-दो मौतें सहन की थीं। कलाकार, शायर और कवि दुर्गेशचन्द्र के मर जाने का शोक और फिर इस बात का शोक कि अपनी बेटी के लिए मर गया है और

यह शोक उसके लिए पहले वाले शोक से भी कहीं अधिक था।

बेटी की विदाई के बाद घंटों बेहोश रहा और कई दिन उसने कुछ न खाया, हर समय चुपचाप और उदास रहा। हर पल उसकी आंखों में आंसू मचलते, तड़पते और बड़े बेकरार होते रहे।

जब वह अपनी होश में होता तो शकुन्तला की तस्वीर से बातें करता वह उस समय भी उसकी तस्वीर से बड़े दुःख के साथ बातें कर रहा था, "मैं अपने तमाम कर्तव्यों से मुक्त हो गया हूं शकुन्त, तुम्हारी बेटी को भी उसका मनचाहा रिश्ता मिल गया है जैसे कि मै तुम्हें बता चुका हूं कि वह अपनी ससुराल चली गई है लेकिन शकुन्त उसके पसन्द के दूल्हे को प्राप्त करने में मेरी जान पर बन गई है। मैं जीवित ही उसके लिए मर गया हूं अब मैं उससे कभी न मिल पाऊंगा, जीवन-भर नहीं। शत्रुओं ने उसे मुझसे छीन लिया है और इस शर्त पर यह शादी हुई है कि हम एक-दूसरे से न कभी मिल पायेंगे न देख सकेंगे।"

उसने शकुन्तला की तस्वीर को उठाकर हृदय से लगा लिया, "अब मैं तुम्हें कोई कविता, नज्म भी और कोई कहानी भी न सुना सकूंगा शकुन्त इसलिये कि कलाकार दुर्गेश जीवित ही मर चुका है और अब मैं जो कुछ लिखता हूं वह किसी और नाम से छपता है। मैं अब तक किसी दूसरे नाम को साहित्य आकाश पर चमकाने के लिए अपने तीन उपन्यास दे चुका हूं और वे तीनों उपन्यास अति उत्तम थ, चौबीस कहानियां भी मैं उसके लिये लिख चुका हूं, उसकी कहानियों के दो संग्रहों और कवितायें, नज्में, गजलें तो उसे पर्याप्त मात्रा में दे दी हैं और ये सब मैने इसलिए किया है कि क्या पता मै अपनी बेटी से न मिल सकने के शोक में शीघ्र मर जाऊं और उसका ऋण मेरे ऊपर रह जाए जितना ऋण चुका सकूं चुका दूं।"

उसने शकुन्तला को बताया, "दो उपन्यास तो मेरे पहले से ही

लिखे रखे थे जो मैंने उसे दे दिये हैं एक उपन्यास मैंने उसके लिए नया लिखा है—क्या तुम उस मनुष्य का नाम मुझ से पूछ रही हो ? नहीं, नहीं वह नाम मै तुम्हें भी न बताऊंगा शकुन्त इसलिए कि मैने नाम न बताने की कसम खाई है। बस समझ लो है कि व; ा क धनिक।

जिसने मेरी आवश्यकता से इतना बडा लाभ उठाया है लेकिन मैं तो उसको शुभ चिन्तक ही कहूंगा। इसलिए कि यदि वह मुझसे यह सौदा न करता तो मेरी और तुम्हारी जोसना की शादी वहां कभी न हो पाती जहां कि वह करना चाहती थी। मै तो उस नेक आदमी का हमेशा आभारी रहूँगा। जिसने मेरे ऊपर इतना बड़ा ऐहसान किया है। वह व्यंग्य से मुस्कराया. "अब लोग मुझसे पूछते हैं कि मैं आजकल लिख क्यों नहीं रहा हूं। मेरा वह प्रकाशक भी यही पूछता है और पांडुलिपि मांगता है और में उससे भी यही कहता हूँ कि अब मुझसे लिखा नहीं जा रहा। मेरा और उस प्रकाशक का एक हजार रुपये महीने का ठेका की समाप्त हो चुका है अब जो दो-चार पैसे मेरे पास रह गए हैं। उसी में अपना गुजारा कर रहा हूँ लेकिन खुश हूँ कि जोसना का विवाह जहां वह चाहती थी उसने कहा था कि यदि उसकी शादो वहां न होगी तो वह आत्महत्या कर लेगी और में अपनी लाड़ली की शादी वहां कर सका यह मेरे साहित्य का सबसे बड़ा इनाम है जिस पर मै अपनी अन्तिम सांस तक गर्व करता रहूँगा।"

उसने शकुन्तला से कहा, "मेरे पास इतना है शकुन्त तुम चिन्ता न करो कि जब मर जाऊंगा तो क्रियाकर्म भी मेरे ही पैस स हो जाएगा और मुझे चाहिए भी क्या ?"

उसके आंसू एकबार और उमड़े और वह उस तस्वीर पर सिर रखकर बेजार होकर रोने लगा।

जोसना की रोते-रोते बुरी दशा हो चुकी थी वह गुस्से से बोली, "उसने अपने ससुर को झकझोर कर रख दिया," कितने निर्दयी और राक्षस हो तुम, तुमने आज वर्ष से मुझसे बहाने बना बनाकर मुझे मिल ने नहीं दिया कभी तुम मुझे अपने बेटे के साथ मसूरी और कभी कश्मीर कभी नैनीताल तो कभी कलकत्ता और आज तुम मुझसे यह बता रहे हो कि तुमने मेरे डैडी से यह वचन लिया कि वह मुझसे कभी न मिल सके। इस शादी की ये दूसरा शर्त थी और पहली शर्त यह थी कि वह पचास हजार रुपया तुम्हे दें।

वह नफरत और फटकारते हुए बोली, "उसने पति अजयकुमार को झकझोर कर रख दिया यदि डैडी ने मुझे यह सब बता दिया होता यदि उन्होंने केवल मेरा मन न रखने के विचार से मुझसे यह बातें न छिपाई होती तो मै इस शादी पर लानत भेज देती। मैं ऐसे मनहूस दिन को अपने से निकाल कर बाहर फेंक देती जो तुम्हारे प्यार मे तड़पता और व्याकुल होता था।" उसने अजयकुमार का गिरहबान पकड़ लिया, "उत्तर दो मुझे कि तुमने यह अत्याचार मेरे बाप पर क्या होने दिया? क्यों नहीं रोका तुमने अपने बाप को इस तुच्छता से!" क्यों? आखिर क्यों?

वह गुस्से से पागल हुये जा रही थी, वह मिसमिसा कर बोली,

"मुझे जबाब दो ?" इसका दण्ड अदा करो नहीं तो मैं तुमसे तलाक ले लूंगी और फिर जीवन भर तुम्हारे नाम पर तथा इस तुच्छ परिवार पर थूकती रहूँगी मैं तुम्हारे बाप पर इस इतने बड़े अत्याचार की सजा में मुकदमा चलाऊंगी उस पर गन्दे गन्दे दोष लगाऊंगी और उसे जेल में सड़ा कर चैन लूंगी मे तुम्हारे सारे परिवार की खाल खिचवाकर बोटी बोटी करके उसे चील, कुत्तों और कौओं कि आगे डाल दूंगी सुअर, दुष्ट, कुत्ते कमीने लोग।"

सब यहां एकत्रित थे और हैरान थे कि अजय बड़े दुख से बोला, "मैं तुमसे बहुत लज्जित हूं जोसना, मैं तुम्हारी कसम खाकर कहता हूं कि मुझे यह सब कुछ नहीं मालूम था तुम्हारा क्रोध बिल्कुल ठीक है जोसना मुझे स्वयं अपने अत्याचारी, लालची और निर्दयी बाप पर तुम से अधिक क्रोध आ रहा है काश ! कि मुझे यह बातें पहले से ही मालूम हो जाती।"

और फिर उसने जीवन में पहली बार अपने बाप से आंखें चार की और वह उस पर बरस पडा, और बहुत कुछ कह चुकने के बाद उसने बाप से कहा,"अब में आपके साथ एक पल भी न रहूंगा बहुत अच्छा हुआ कि आपने अपना सब कुछ मेरे नाम करवा दिया है अब मै आपको यह बताऊंगा कि इतने बडे अत्याचार का दण्ड क्या होता है ? बेकशी और लालची का तमाशा देखने वाले को अब स्वयं भी मजबूर और लाचार होना पडेगा। मैं अपनी सम्पत्ति, धन में से आपको धेला भी न दूंगा आप जो कि दूसरों को जीवन भर रुलाते, तरसाते आदि तड़फाते रहे है अब स्वयं तड़पो, रोओ, गिड़गिड़ाओ ताकि आपके पापों का प्रायश्चित्त हो सके, उसने कहा,"और अब मै उस सुअर के बच्चे अपने चाचा ओमप्रकाश को भी समझूंगा और उसकी धर्मपत्नी को भी जोसना और उसके भाई अजीत के मारे हुए हक की पाई पाई उसो सूद

दर सूद के साथ देनी होगी। वर्षों की दबाई सम्पत्ति आदि करके सूद दर सूद में उसका सब कुछ नीलाम करवा दूंगा।"

जोसना ने विश्वास और संतोष की लम्बी सांस ली अब तुम सही अर्थों में मेरे मित्र बने हो अजय, तुमने मेरी तड़प और व्याकुलता को समझा है और मैं तुम्हारा यह अहसान जीवन भर याद रखूंगी मेरे प्यारे पिता ने बहुत बड़ी मुहब्बत मुझसे की है और ऐसा प्यार किया है जिसका उदाहरण संसार में नहीं मिल सकता। मेरे लिये सारा जीवन उन्होने दुःख झेले और उसके मुंह से उफ तक न निकली। मेरी खुशी के लिये मेरे इस ब्याह कि कारण ऐसे ऐसे दुःख झेल गये और मुझसे एक जरा सा जिक्र भी उन्होंने न किया। कर्म या एहसान का एक शब्द भी उनके मुंह से न निकला और फिर अजय को साथ लेकर पिता के घर को चल पड़ी।

वह अपने पिता के पैरों से लिपटी रो रही थी और अजय भी ऐसा ही कर रहा था। बड़ी कठिनाई से दुर्गेश ने उन दोनों से अपने पैर छुड़वाये और उन दोनों को गले से लगा लिया वह तीनों रो रहे थे। तीनों की आखों से एक साथ गंगा-जमुना और सरस्वती बह रही थी।

जोसना हिचकी भरकर बोली,"आपने बडे-बडे अत्याचार मेरे लिये सहन कर लिये और अपने उन दुःखों का मुझसे जिक्र तक न किया।" उसने बड़ दुःख से कहा।

"क्या हो जाता यदि अजय से मेरी शादी न होती मैं मर भी जाती तो क्या होता ? मेरे कारण इतने दुःख तो न झेलते आप।" उसने

बहुत सी बातों के बाद पिता से पूछा, "अब मुझे यह बताइये डैडी वह चढ़ावे के पचास हजार रुपया आप कहां से लाये थे और मेरे दहेज और शादी पर जो आपने हजारों की राशी व्यय की थी वह कहां से आई थी आप के पास।"

उसने कसम दिलाई, "आपको मेरी तथा भैया की सोगन्ध तथा मेरी मां की कसम जिन्हें कि आप इतना प्यार करते हैं, सच सच बताइएगा कि इतनी बड़ी रकम कहां से आपके पास आई ?"

अपनी बेटी की इन कसमों से बाध्य होकर दुर्गेश ने बताया, "मैंने अपनी कला सदा के लिये एक करोड़पति के हाथों बेचकर पचहत्तर हजार रुपये लिए थे बेटी, इस रुपए वाले ने पचहत्तर हजार रुपय मुझे इस शर्त पर दिये थे कि मैं जो कुछ लिखूं उसे दूं और वह उसके नाम से छपे और मैं दुर्गेशचन्द्र कलाकार की जिन्दगी में ही दुर्गेशचन्द्र कलाकार को सदा के लिये मार डालूं और अब तक मैं उसे बहुत कुछ लिखकर दे चुका हूं बेटी और यह बहुत कुछ उसके नाम से छप भी चुका है, "और यह सुनकर जोसना और अजय बुत बनकर एक-दूसरे की ओर देखा। जोसना एक अपने बाप के कदमों पर गिर पड़ी। "आप देवता हैं डैडी, आपने अपनी बेटी के जीवन और खुशी के लिए वह किया है जो इतिहास के पन्नों में सोने के अक्षरों में लिखा जाना चाहिये था।

फिर उसने क्रोध और घृणा से पूछा, "उस निर्दयी और काम के शौकीन पैसे वाले का क्या नाम है डैडी ?"

दुर्गेश ने जोसना को उठाकर अपने गले से लगा लियां वह बोला'

"अब नाम जाने दो बेटी, तुम्हें मेरी कसम बेटी कि उसका नाम जानने की हठ मुझसे न करना। इसलिये कि यह मेरी कसम है कि में उसका नाम कभी प्रकट न करूंगा।"

"आप सचमुच देवता है डैडी।"

अजय के मुंह से निकला, 'मनुष्य के रूप में देवता है।"

"आप उसके पचहत्तर हजार लौटा दीजिये डैडी," जोसना ने कहा।

"अब आपकी और पुस्तकें उसके नाम से न छपेंगी।"

और जोसना बात काटकर व्याकुलता से बोली, 'बेटी का पैसा मैं आपको लेने को नहीं कह रही डैडी ईश्वर न करे कि आपको उसकी शर्म उठानी पड़े माता जी का अधिकार हमने उस बेईमान ओमप्रकाश से उगलवा लेन का निर्णय कर लिया है।"

-'अब में और अधिक दिन तक जीवित न रहूंगा बेटी, अब मेरे कर्तव्य के साथ-ही-साथ जीवन के दिन भी पूरे हो चुके हैं फिर यह गड़बड़ काहे की बेटी ?"

उसने एक ठंडी आह भरी, "तुम्हारी मां कब से मेरी राह तक रही होगी और मेरा मन भी कहां लगता है बेटी, बस अब मैं जाने ही वाला हू।"

और फिर दूसरे दिन देश का यह महान कलाकार इस संसार में न था वह अपनी शकुन्त की तस्वीर से बातें करते-करते उसका हार्ट फेल हो गया था अपनी शकुन्त की तस्वीर अपने हृदय पर रखे-रखे गया उसकी बेचैन

[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]